दाँवपेंच

[नशा अन्य हास्य-रहस्य-कहानियां और रूपक]

ललितकुमार सिंह 'नटवर'

प्रकाशक—

कल्याणदास एण्ड ब्रदर्स

ज्ञानवापी, बनारस-१

तीय संस्करण]   १९५६

विषय-सूची

प्र, मध्यमेश्वर, बनारस।

दाँव-पेंच

बँगला के सुप्रसिद्ध कथाकार तथा सिने-निर्देशक श्री प्रेमेन्द्र मित्र
ा लिखित और निर्देशित एम० पी० प्रोडक्शन के 'पथ बँधे
ों' बँगला फिल्म का हिन्दी रूपान्तर इन पंक्तियों के लेखक ने
या था, और जालिम दीवान की भूमिका भी निभाई थी। हिरो-
थी काननदेवी और बंगाल के अद्वितीय अभिनेता श्री छवि
ास हीरो थे। उसी चित्र की कहानी है। भाषा और कथांश
लेखक के अपने हैं।

'देशी रजवाड़ों में पहले जो दांव-पेंच चलते थे, ऐसी ह
मांच-लीला का दिलचस्प बखान है।'

१

गयगढ़ का कुमार दीपनारायण सिंह मस्त और सैलान स्वभाव का है। सुन्दर, सुसंस्कृत, पढ़ा-लिखा सहृदय। हाल ह में विलायत से लौटा है। क़र्ज़ ले लेकर राजसी- ठाट निभा रहना, इस राज्य की परम्परा रही है। कुमार दीप की भी दशा है। इधर-उधर सैर-सपाटे करना, गोज उड़ाना रंगीन बोतलों में ग़म को डुबकियाँ खिलाते रहना—उसका क काम है।

एक दिन—काशी की अहिल्याबाई घाट पर। सबेरे शह की मीठी तान अलसाई हवा को गुदगुदा रही थी। ऊपरी सीढ़ी बैठा हुआ एक विरागी, गीत में अपनी वेदनाओं की कुहकन अ वायुमंडल में और भी मस्ती उड़ेल रहा था। अचानक कुमार दीपनारायण हैण्ड-केमरे का निशाना साधे आ निकला। उस इच्छा विरागी की फोटो लेने की हुई। केमरे की चुरा लेनेव आँख पर आँखें गड़ाकर और माल हड़प जाने का खटका खट दबाकर, कुमार ने ज्योंही केमरा सँभाला कि सामने देखकर उस सिट्टी-पिट्टी गुम। एक देव-कन्या सरीखी-रंगीली-सुन्दरी, राज चितवन तरेरे, केमरे की सीध में खड़ी है।

"बड़े शरीफ़ हैं आप ?"

"जी, माफ़ कीजियेगा, मेरी इच्छा·······।"

'गंगास्नान करनेवाली बहू-बेटियों की फोटो लेने की'·

"जी नहीं नहीं, मैं तो इन गायक साधुजी का चित्र उतार रहा , कि अकस्मात् आप बीच में आ गई। आँखें केमरे पर लगे .हने के कारण मैंने आपको देखा ही नहीं।"

'परन्तु मैंने तो आप के इस शरीफ़-लबादे के अन्दर की असलियत ताड़ ली ?'

लेकिन लाख सफ़ाई देने पर भी जब दूसरी ओर से तनिक भी विश्वास न किया गया तो क़ीमती केमरे को गंगाजी में फेंक कर, शान से सुन्दरी को 'नमस्ते' कहता हुआ अभिमान के साथ दीप चलता बना। किन्तु किसे मालूम था कि इस अनजानी मुलाक़ात में विधाता कौन सा खेल रच रहा है।

२

युवती मीनाघाट रियासत की राजकुमारी चन्द्रावली है। हाल ही में बालिग होकर पिता की गद्दी पर बैठी है। राज-काज दीवान सूर्यशंकर सिंह सँभालते आ रहे हैं। स्वर्गीय महाराज के समय उनकी उननी चलती न थी, किन्तु आजकल क्या कहना है! रौबदाब सातवें आसमान पर चढ़ा हुआ है। प्रजा को नाकों दम है। अधिकांश प्रजा जंगली है—कट्टर और परिश्रमी। उसे पीस डालने में दीवानजी ने कुछ भी उठा नहीं रखा है।

इन दिनों उन पर और चिन्ता सवार है। राज्य की बागडोर सुरक्षित रखने के लिये, राजकुमारी का ब्याह किसी ऐसे के साथ रचना चाहते हैं जो कठपुतली की तरह इशारों पर नाचता

रहे। परन्तु हो वह भी राज्य-मर्यादा के अनुकूल, कुलीन और शिक्षित। अन्त में बहुत दौड़-धूप और छानबीन के बाद ऐसे एक 'हर तरह योग्य' वर का पता चला। वह और कोई नहीं, वही रायगढ़ का राजकुमार दीपनारायण है। दीवानजी को पता भी नहीं था कि राजकुमारी से दीप की कभी भेंट हो चुकी है। वे एक दिन एक पंडितजी-घटक के साथ 'मीनाघाट पैलेस' से कार द्वारा 'रायगढ़-निवास' पहुँचे। कुशलक्षेम के बाद भूमिका शुरू हुई। फिर तो जो बातों का सिलसिला चला, उसे ठेठ बोली में मोल-तोल' या 'ठठेरे ठठेरे बदलौवल' ही कहा जा सकता है। क्योंकि दीवानजी यदि घुटे हुए घाघ थे, तो कुमार भी कम छँटा हुआ न था। अन्त में सब कुछ समझकर और कुछ और सोचकर कुमार बोला—

'बस-बस दीवानजी, अब और कहने की जरूरत नहीं। मीना-घाट की राजकुमारी के वर के नाम पर आपके हाथों अपने आप को बेंच देने को तैयार हूँ। परन्तु.........।'

दीवानजी कूटनीति की मुस्कान के साथ एक खासी रक़म का चेक काटकर—बढ़ाते हुए—बोले—

'अब परन्तु-वरन्तु छोड़िए। और यह स्मरण रखने के लिये इसे स्वीकार कीजिये कि अगले बुधवार के ४ बजे संध्या-समय आपको 'मीनाघाट पैलेस' आना है।'

३

मगर उस दिन, दीवान जी के बिछाए शतरंज पर दुतर्फी चाल चली गई। मीनाघाट-पैलेस में भी, और रायगढ़-निवास में भी। 'कन्या-देखाव' की शुभ घड़ी के कुछ पहले ही राजकुमारी ने एक अत्यन्त आवश्यक राज-काज के बहाने दीवानजी को मीनाघाट भेज दिया, और अपनी चचेरी बहन लीलाको राजकुमारी की वेश-भूषासे सुसज्जित कर दिया। उधर, दीप ने भी अपने बदले, दिली दोस्त बिजयकुमार को राजकुमार दीप बनाकर वहाँ भेज दिया।

बड़े आदर और ठाट-बाट से स्वागत किया गया। 'कुमार साहब' खास महल में ठहराये गये। सखियों के द्वारा 'राजकुमारी' से परिचय कराया गया। फिर तो, दोनों ने दोनों को सकुचाई आँखों से देखा और ललचाई आकांक्षाओं से गुपचुप परखा। किन्तु उनकी अन्तर-आशंकाओं का क्या कहना! मन-ही-मन भगवान से मना रहे थे, किसी प्रकार भाँडा न फूटे और शीघ्र-से-शीघ्र छुटकारा मिले। इतने ही में आगबबूला बने, लपकते हुए दीवानजी आ धमके। लीला को काटो तो लहू नहीं। विजय-कुमार की बोलती बन्द! कर्मचारियों और सखियों पर शनि-कोप का आतंक। और इस प्रकार 'कन्या-देखाव' की निराली रस्म-अदाई।

कुछ अनुमान और कुछ खोज से दीवानजी को बहुत कुछ

मालूम हो गया। यहाँ कुछ न बोले। ·······पता लगाकर उस होटल के कमरे में मौत की तरह टपक पड़े जहाँ कुमार दीप रस्त-रस की गंगा में ग़म को गोते खिला रहा था। इच्छा तो हुई, इसी हालत में उसे कच्चा ही चबा जायँ, किन्तु मौक़ा-महल देख कर क्रोध पीते हुए बोले—

'क्या समझकर आपने चाल चलने का साहस किया ?'

दीप—'पहले तो आपकी ही तरह से हुई दीवानजी !'

दीवान—(क्रोध-विस्फोट रोक कर) 'मगर, आप मात हो गये।,

दीप—(हँसकर) 'आपकी बराबरी भला कौन कर सकता है ?'

दीवान—मैंने नहीं, राजकुमारी ने आपको बुत्ता दिया।'

दीप—'किस प्रकार ?'

दीवान—'हुँह' चले थे मीनाघाट-राजनीति से टक्कर लेने। नक़ली राजकुमार से नक़ली राजकुमारी की भेंट करा दी गई।'

दीप—(आश्चर्य से) 'अच्छा।'

दीवान—'जी !'

दीप के मन में राजकुमारी की इस चातुरी पर एक विचित्र कौतूहल हुआ। कम से-कम एक बार देखने की प्रबल उत्कंठा उत्पन्न हुई। प्रकट में बोला—

'अच्छा दीवानजी, बीती बिसारिए। भूल तो आखिर हो ही गई मुझसे। अब कहिए क्या आज्ञा है ?'

दीवान—(शिकार को अनुकूल समझ) 'मेरी आज्ञा क्या ? मैं तो आपकी—रायगढ़ ऐसे प्रतिष्ठित राजवंश के उत्तराधिकारी की, भलाई के विचार से ही यह सुन्दर सम्बन्ध जुटा देना चाहता था, क्योंकि मीनाघाट का राजवंश भी.....।'

दीप—(बात काटकर) 'तो मैं आपके आज्ञानुसार प्रस्तुत हूँ। बोलिए क्या करना होगा ?'

दीवान—'राजकुमारी को लेकर आज हम राजधानी जा रहे हैं। ठीक आठवें दिन—सवेरे की गाड़ी से आप वहाँ आइए। क्या कहते हैं ?'

दीप—'जी, मैं अवश्य पहुचूँगा।'

दीवान—'आपके स्वागतके लिये राज्य के कर्मचारी स्टेशन पर मौजूद रहेंगे। किन्तु स्मरण रहे, फिर किसी प्रकार की गड़बड़ी कीजियेगा तो.....।'

दीप—'नहीं नहीं, अब ऐसी भूल न होगी, विश्वास कीजिये।'

४

विचित्र संयोग !—ट्रेन के जिस सेकेण्ड-क्लास कम्पार्टमेण्ट में दीप सवार हुआ, एक पढ़े-लिखे अजीब उजबक से भेंट हो गई। महाशयजी बर्थ पर होल्डौल बिछा कर, सिरहाना इञ्जन की ओर करना चाहिये या उलटी तरफ—यह निश्चय न कर पा रहे थे। इस विचित्र मनोवैज्ञानिक उलझन के तमाशेसे तंग आकर दीप ने जब अनिमंत्रित सुझाव पेश कर दिया कि 'जनाब' आगे-पीछे का

विचार छोड़कर बीचमें रख दीजिये' तो हजरत बहुत झुँझलाये। फिर दोनों में मुसाफिरी सुलभ-सौहार्द हो गया। दीप को बताया उन्होंने 'रियासती वकीलके उम्मीदवार चुने जाकर मीनाघाटी जा रहे हैं। इधर शिवपुर-मिडिल-इङ्गलिश स्कूल की हेडमास्टरी की मंजूरी भी आ गई है। अभी तक फैसला नहीं कर पाये हैं कि कहाँ जायँ।"

दीप ने कहा—'वाह साहब' आप तो बड़े भाग्यवान हैं। दो-दो जगहों से बुलाहट, तिस पर इज्जत की नौकरियाँ। और एक हम हैं बदनसीब, कहीं कोई नहीं पूछता।' महाशयजी तक़दीर की खूबी पर मन-ही-मन इतराये तो, मगर निर्णय न कर पाये कि कौन नौकरी स्वीकार करें। आखिर पूछा—

'क्यों साहब' रियासती कामों में तो भारी झंझट-झमेले लगे रहते हैं, और धौंस भी सहनी पड़ती है?'

दीप—(गम्भीरता से) 'इसमें क्या संदेह है महाशय! राज-काजी लोगों की जान सदा उलझन और खतरे में रहती है।'

कुछ सोचकर फिर उजबक महाशय ने पूछा—

'मीनाघाटी स्टेशन के पहले जो जंकशन पड़ता है, उसके द्वारा कलकत्ते लौटने की गाड़ी तुरंत ही मिल जायेगी न?'

दीप—'वहाँ उतरते ही पता चल सकता है।'

फिर दोनों को नींद आ गई।

सबेरे मीनाघाट स्टेशन पर जब कुमारकी आखें खुलीं तो

देखा सामने का बर्थ खाली है। सोचा, रियासत की वकीली आखिर स्कूल मास्टरी से हार गई। इतने में ही रियासत के कई कर्मचारियों ने आ घेरा। पूछने पर मालूम हुआ कि इसी ट्रेन से आने वाले कुमार दीपनारायन और वकील जगदीश लाल को लेने आए हैं। एक ने पूछा 'आप....?'

कुमार दीप—'जी ..... मैं एक मामूली आदमी ....।'

उस कर्मचारी ने उन्हें वकील समझ लिया — 'ओ' तो आप जगदीश बाबू हैं ? 'कुमार ने भी कुछ समझकर उत्तर दिया—

'जो समझ लीजिये; लेकिन हूँ बिल्कुल साधारण व्यक्ति।'

कर्मचारीने हँसकर कहा—'आप वकील लोग बातें बनाना खूब जानते हैं।' फिर कुमार के न आने पर खेद प्रगट करते हुए अन्य व्यक्तियों से कहा—'वकील साहब का सामान ले चलो।' और इस प्रकार कुमार दीप को वकील जगदीश के रूप में, राज-कर्मचारियोंने राज-महल में पहुँचाया।

कर्मचारी दीप को दीवान की हजूरी में ले गये। पहचानते ही एकाएक दीवान पागल ही हो उठना चाहता था कि बड़ी चेष्टा से अपने को सभाला, कर्मचारियों पर कुछ भी प्रगट न होने दिया। किन्तु जब सब इशारा पाकर बाहर चले गये तो जैसे बाघ शिकार पर झपता है, उसी मुद्रा में झपट कर कुमार से बोला—'अगर नक़ली नाम की धोखाधड़ी के अभियोग में, तुम्हें गिरफ्तार करा दूँ, तब,?' 'तब' ? कुमार बोला 'तब मैं और

क्या करूँगा ? सिवा इसके कि मुझसे ब्याह रचाने की आड़ में राजकुमारी के साथ जालसाजी करने के प्रमाणस्वरूप मैं आपका हस्ताक्षर किया हुआ चेक पेश कर दूँ।' दीवान की इच्छा तो हुई कि अभी कुमार को कच्चा ही चबा जाए, किन्तु परिस्थितियों की मजबूरी ने लाचार कर दिया। अन्दर ही अंदर दाँत कट-कटाकर रह गया।

५

वकील जगदीशलाल के नाम से दीप एक अच्छे क्वार्टर में आराम से रहने लगा। दीवान अवसर की ताक में घात लगाये रहा। उसने पूरी चेष्टा की कि राजकुमारी से दीप न मिलने पावे। अन्त में एक दिन सुयोग आ ही गया। दीप साइकिल पर सवार होकर घूमने निकला। सरकारी बागीचे की सँकरी सड़क पर उधर से एक सुन्दर टमटम आ रही थी। बचाने की भरपूर चेष्टा करने पर भी—साइकिल-टमटम की आखिर एक हलकी टक्कर हो ही गयी। दीप गिरते-गिरते बचा। क्रोधभरी दृष्टि जैसे ही टमटम-सवार पर गयी, मुँह से प्रकट होनेवाला आक्रोश वहीं दब गया। उधर सलज्ज, मुसकुराहट भरे मधु मुखसे निकल पड़ा—'माफ कीजियेगा।' दीप ने देखा, वही काशी-घाट वाली गर्वीली युवती है। शायद उसने भी पहचान लिया। क्षण भर कोई कुछ न बोला, किन्तु चारों आँखें न जाने चुपके-चुपके आपस में क्या कह-सुन गईं। प्रगट रूप से जान-

पहचान की नींव पड़ी। दीप ने बताया, वह नया-नया रियासत का वकील होकर आया है। युवती—राजकुमारी ने अपना वास्तविक परिचय न देकर कहा—

'मैं रानीजी की खास सहेली हूँ।, और टमटम से उतर पड़ी। दीप ने भी साइकिल को एक वृक्ष के सहारे लगा दिया। फिर दोनों पास के एक प्राचीन खँडहर में चले आए। क्षण भर कोई कुछ न बोला। दीप ने मौनता भंग की—'क्या रानी जी अपने कर्मचारियों को कभी दर्शन नहीं देतीं ?'

'देती हैं' युवती ने उत्तर दिया 'किंतु यह दीवान जी की मर्ज़ी पर है।'

दीप—'दीवान की मर्ज़ी पर अपने कर्मचारियों को दर्शन देती हैं। तब तो अच्छा शासन चलाती हैं।'

युवती—(मुस्कुराकर) क्या इसमें कुछ असुविधा है ?'

दीप— सुविधा-असुविधा की बात तो मैं नहीं बता सकता। मामूली कर्मचारी हूँ—तिस पर नया' क्या जानूँ ? हाँ' आपसे एक निवेदन है।'

युवती—'कहिये।'

दीप—'क्या आपके दर्शन कभी-कभी हो सकते हैं ? इसमें तो दीवनजी की मर्ज़ी की जरूरत नहीं है ?'

युवती—'दीवानजी की मर्ज़ी की, यहाँ हर काममें जरूरत है वकील साहब ! खैर' मैं चेष्टा करूँगी।'

दीप—'तो कल इसी समय यहीं, आशा करूँ ?'

युवती—'देखिये, मैं पूरी चेष्टा करूँगी, परवश हूं।' अच्छा, देर हो रही आज्ञा दीजिये। नमस्ते।'

दीप—'नमस्ते।'

शाम को राजकुमारी ने दीवानजी से पूछा—'अच्छा दीवान काका, यह जो स्टेट का नया वकील आया है, कभी दरबार में नहीं आया।'

दीवान—'क्या बताऊँ बिटिया, बड़ा झेंपू है। कई बार हाजिर होने को कहा—मगर कहता है-कुछ दिन और ठहरिए, जरा अपने में साहस बटोर लूँ तो रानी जी के दर्शन कर सकूँगा।'

राजकुमारी—(मुस्कराकर) 'ओ यह बात है! अच्छा किसी दिन उसे जरूर लाइए।'

दीवान—'भला इसके बिना भी चल सकता है? उसे दरबार में आना ही पड़ेगा।'

दूसरे दिन। ठीक उसी समय, दीप खण्डहर में जैसे ही पहुँच, वीणा-विनिन्दित-स्वर लहरीमें किसी का स्वर्गीय संगीत सुन पड़ा। आगे बढ़कर देखा। वही कलवाली—मतलब बनारसवाली—युवती जूही के पौधे की एक फूल भरी टहनीसे खेलती हुई गा रही है। मंत्रमुग्ध हो-स्तब्ध भाव से दीप खड़ा-खड़ा सुनता रहा। जैसे ही गीत खत्म हुआ, उसने सायकिल को एक पेड़ के सहारे लगा दिया। एक हलकी झनझनाहट की आवाज हुई। युवती ने जरा चौंककर इधर देखा, और सलज्ज-नाट्य से बोली—

'भला यह कौन सा तरीक़ा है कि कोई स्त्री अकेले में—अपना दुःख भुलाने को कुछ गा रही हो तो कोई पुरुष चुपके से आकर सुने ?'

दीप पहले तो कुछ घबराया, फिर बोला—

'इसके उत्तर में सिवा क्षमा-याचना के और क्या कहा जा सकता है ?' और फिर मैं तो किसीके दर्शन पानेकी स्वीकृति प्राप्त करके ही यहाँ आया हूँ। क्या मालूम था कि जैसे इस खण्डहरकी राजलक्ष्मी इस तरह दर्शन देंगी !' राजकुमारी मन-ही-मन प्रसन्न हुई।

बोली—'पुरुषवर्ग, विशेषकर क़ानूनी लोग बड़े ही वाक्पटु होते हैं। खैर, यह तो बताइए। कल आपने राजकुमारी जी के दर्शन की कामना प्रगट की थी, फिर मुझसे मिलने की चाह एकाएक कैसे हो उठी ?'

दीप—'आपसे मिलने की सम्भावना तो नहीं थी, फिर भी एकाएक इस प्रकार मिलने पर.......क्या बताऊँ, काशी की घटना तो जीवन भर भूलने की नहीं है। और रानी जी के दर्शन एक बार करने की इच्छा से ही तो मैं.......'

राज०—'उन्हें तो आपने कभी देखा भी नहीं, फिर दर्शन की उत्सुकता का कारण ?'

दीप—(सँभलकर) 'बात यह है कि मैंने सुन रखा था कि

रानी जी का अधिकार केवल महलों तक ही सीमित है, और प्रजा पर हुकूमत कोई और करता है। इसीलिये.......'

इतने में ही एक घटना घटी। जंगली प्रजा का मुखिया जंगी सरदार दीवान के विरुद्ध था। ऐसा न हो कि वह 'नए वकील' से मिलकर सारा भेद खोल दे' इसीलिए दीवान जी ने उसे पकड़ने के लिये सिपाही छोड़ रखे थे। जंगी भागता हुआ इधर ही आ निकला और इन दोनों से, पीछा करनेवालों को न बताने की प्रार्थना करता हुआ, आड़ में छिप गया। सिपाही भी दौड़ते हुए आये, और इधर-उधर ढूँढ़ने लगे। जमादार की दृष्टि रानी पर पड़ी, उसने चुपके से आदमियों से कहा 'रानी जी'। और फिर राजसी सलामी देकर सब चलते बने। दीप को तो जैसे काठ मार गया। कुछ डरा। कुछ झेंपा कि रानी ने तीसरी बार उसे मात दी। साथ ही मन ही मन रीझा भी। और अन्त में अभिमान भी हो आया। इतने में ही जंगी को पकड़े हुए कर्मचारी आ पहुँचे। जंगी रानी की दुहाई दे रहा था कि उस पर कैसे-कैसे अत्याचारी किये गये हैं। और अब.......दीप उसकी बात काटकर रानी की ओर संकेत करते हुए बोला—

'सरदार' तुम किससे क्या कह रहे हो? भेड़िये की फरियाद बाघ से करने आये हो?' रानी इस व्यंग पर तिलमिला उठी, और कुछ क्रोध के साथ दीप की ओर देखती हुई चल पड़ी।

सिपाहियों की तरह दीप ने भी सलामी दागी। जंगी को रस्सियों से खूब जकड़कर काठ की पिंजड़ेनुमा कैदी गाड़ी में बंद कर दीप से जमादार बोला—

'हुजूर दीवान जी का हुक्म है, इसे सख्त पहरे में कैदखाना पहुँचाया जाये।' 'ठीक तो है' कहता हुआ दीप गाड़ी के पीछे बैठ गया और जमादार से बोला—'मैं खुद अपनी निगरानी में इसे कैदखाना पहुँचाता हूँ, तुम लोग मेरी साइकिल लेते आओ।' कुछ दूर आगे जाने पर दीप पिंजड़े के द्वार का खटका हटाकर कैदी से बोला—

'क्यों सरदार सो गये?' जंगी दुख की मुस्कुराहट चेहरे पर लाकर बोला—'हुँह, मेरी आँखों में और नींद? क्या कहते हो, दारोगा जी!'

'मैं दारोगा नहीं, वकील हूँ।' दीप ने कहा।

जंगी—'वकील? क्या मतलब?'

दीप—'वकील माने क़ानून जाननेवाला।'

जंगी—'हुँह, तो इस राज्य में क़ानून जाननेवाले की क्या जरूरत? यहाँ तो दीवान जी का हुक्म ही क़ानून है।'

दीप—'किस तरह?'

जंगी—'आप शायद नए-नए आए हैं। यह सब पूछिएगा तो आप पर भी आफ़त आयेगी।'

दीप को पहले ही से कुछ-कुछ दीवान जी की कार्यवाहियों का पता था। जंगी से घुमा-फिरा कर पूछने पर और भी बहुत

कुछ की जानकारी हो गई। गाड़ी ऐसे स्थान से जा रही थी, जहाँ वृक्षों की बहुतायत से दिन में ही अंधेरा-सा हो रहा था। दीप गाड़ीवान से गाड़ी रुकवाकर पेशाब करने के बहाने उतर कर एक ओर—ज़रा दूर चला गया। जंगी ने देखा कि पिंजड़े का द्वार अधखुला सा है। पैर से हटा कर देखा, एकदम खुल गया है। बस आहिस्ते से उतर कर चुपचाप एक तरफ़ भागा। गाड़ीवान को आहट मिल गई, चिल्लाना शुरू किया—'पकड़ो-पकड़ो, कैदी भाग गया, कैदी भाग गया।'

\+ \+ \+ \+

६

दूसरे दिन, पहले-पहल दरबार में दीप की पेशी हुई। रानी गम्भीर भाव से सिंहासन पर विराजमान थी। दीवान ने कैफ़ियत तलब की।—'राज्य के सबसे बड़े विद्रोही जंगी सरदार को किसने चुपके से रिहा कर दिया?' दीप उबल पड़ा। रियासती अत्याचारों से परिचित हो ही चुका था। साथ ही, रानी ने भी अपना भेद छुपा कर—उसे जो बुत्ता दिया था। उससे भी वह क्रुद्ध हुआ था। रानी के अनजाने या लापरवाही से, राज्यकर्मचारियों के ज़ुल्मों का पर्दाफ़ाश बड़े ही जोशीले शब्दों में करता हुआ, इस्तीफ़ा देकर तेजी से चलता बना। रानी को अनुभव हुआ, जैसे वह खोई जा रही थी। मन का भेद छिपाकर दीवान से बोली—'काका, इस

प्रकार अभिमानपूर्वक इस्तीफ़ा देकर कोई कर्मचारी बेधड़क चला जाये, यह राज्य का अपमान है। चाहे जैसे हो, लौटा कर—उसे उसी काम पर बहाल कीजिये, और फिर उसे बेइज्ज़ती के साथ कभी निकाल बाहर किया जायेगा।'

घाघ दीवान शायद रानी के मनकी भाँप गया। इसलिये दीप के निवासस्थान में जाकर उसने बातों का सिलसिला कुछ इस तरह शुरु किया, जिससे दीप और भी भड़क उठा। दीवान बोला—

'राजकुमारी तो आपको जाने देना पसंद नहीं करतीं। इसलिये मैं आपको लौटाने आया था। पर देखता हूँ, आपका इरादा अटल है। खैर, जब आप जा ही रहे हैं, तो रास्ते में आपको कष्ट न हो, इसलिये (दो हज़ार के नोट देते हुए) यह छोटी सी रकम मंज़ूर कीजिये।"

दीप क्रोध से इस्तीफा देकर चला तो आया, पर रास्ते भर उसका हृदय अशान्त रहा। राजकुमारी के आन्तरिक और बाह्य आकर्षणों से वह बेतरह प्रभावित हो चुका था। साथ ही यह भी उसके ध्यान में आया कि सुशिक्षिता-सुचतुरा है तो क्या हुआ, धूर्त दीवान राज्य में गोलमाल मचा कर बेचारी को बर्बाद कर देगा। एक विचित्र बेचैनी अनुभव करने लगा। 'क्या··· किसी प्रकार इस्तीफ़ा लौटाया नहीं जा सकता? इतने में ही दीवान की आकस्मिक उपस्थिति और उसकी कूटवार्ता ने फिर

माथे में खलबली मचा दी। इस्तीफ़ा वापस लौटाने की इच्छा को क्षणिक दुर्बलता समझ, वह राजधानी त्यागने को ौर तत्पर हो गया था, किन्तु दीवान को दो हज़ार के नोट देते देख विचारों ने पलटा खाया। तेज़ दिमाग़ तेज़ी से दौड़ने लगा। रानी का तेजस्वी पर भोला मुखड़ा, उस पर एक विपद् की छाया, राज्य की कुव्यवस्था, दीवान की चक्रचाल, दीप के मानस-पट पर विद्युत-गति से चित्रित हो उठे। क्षण भर में ही, मन-ही-मन कर्तव्य निश्चित करके बोला—

'क्या करूँ दीवानजी, रानी जी की आज्ञा; तिस पर आप इतना कष्ट उठाकर खुद अनुरोध करने आए। इस्तीफ़ा नहीं लौटाता हूँ तो डबल अपराध होगा। पर एक शर्त है। मुझ सेवक को सदा अपनी छत्रछाया में रखियेगा।'

दीवान मन में कट तो गया पर प्रगट बोला—

'आपके इस निश्चय से बड़ा संतोष हुआ।'

७

अब तो रानी और राज्य-वकील हिल-मिलकर राजकाज की समुचित देख रेख करने लगे हैं। दीवान जी की उतनी जरूरत नहीं होती—इससे उनके पैरों के नीचे की धरती खिसकती-सी जान पड़ती है। तब उन्होंने एक गहरी चाल चली। राजीव-लोचन उनके दूर के रिश्ते का नाती है। बिगड़े रईस का मातृ-पितृ-हीन लड़का, तिस पर औव्वल दर्जे का भोंदू और पियक्कड़।

उसकी एक मौसी है, जो उसकी भी चाची है। दोनों को दीवान जी बड़े आदर से राजमहल के अतिथि गृह में ले आते हैं। लोगों को न जाने किस तरह मालूम हो जाता है कि सम्माननीय युवक अतिथि ही राजकुमारी चन्द्रा का भावी पति है।

एक दिन रानी और वकील टेबल पर फैले एक नक्शे को देख रहे थे। अगर कोई इन दोनों के देखने की लुका चोरी को गौर से देखता तो एक दूसरा ही नक्शा बनता हुआ नजर आता। जब राजकुमारी नक्शे पर गम्भीर होकर देखती तो वकील चुपके से उसके मुखड़े को निहार लेता, और जब वकील नक्शे पर दृष्टि जमाता तो रानी उसके चेहरे का चित्र आँखों में उतार लेती। इस अभिनव-अभिनय के अतिरिक्त दोनों के अन्तर में भी जो एक प्राकृतिक लुकाचोरी का दृश्य अङ्कित होता जा रहा था, उसे अन्तर्यामी के सिवा और कौन देख सकता है। हाँ, दीवानजी की आशंकित-कल्पना बेचैनियों के पंख लगाए हरदम-हर जगह चक्कर काटती रहती थी। दीप ने नक्शे पर तर्जनी घुमाते हुए कहा—

'अगर जङ्गल का यह हिस्सा साफ कर सड़क निकाल दी जाय तो जङ्गलियों का खतरा भी बहुत कुछ टले और उन्हें सुविधा भी हो।'

राजकुमारी ने मुस्कुरा कर उत्तर दिया—

'मगर दीवान काका की राय कुछ और ही है।'

इसके उत्तर में दीप कुछ कहना ही चाहता था कि आकस्मिक वज्रपात की तरह दीवान जी झटसे आ धमके और बोले—'देखता हूँ, बेतरह उलझी हुई हो बिटिया !'

राजकुमारी—(सँभल कर) 'नहीं नहीं, उलझना कैसा काका ? एक नक्शे पर विचार कर रहे थे हम लोग। आप भी आ ही गये हैं, देखकर पास कर दीजिये।'

दीवान—'इस समय एक दूसरे ही आवश्यक काम से आया हूँ बेटा। बात यह है कि (लम्बी भूमिका के उपसंहार का अन्त करते हुए) स्वर्गीय महाराजाधिराज जो भार इस वृद्धि सेवक पर सौंप गये, उसमें एक तो तुमने आप ही हलका कर दिया।········ क्या नाम है ? हाँ जगदीश बाबू ऐसे राजकाजी—सलाहकार तुम्हें प्राप्त हो गए हैं। अब एक दूसरा बोझा उतार दूँ तो निश्चिन्त होकर काशीवास करूँ। कुमार दीप तो महा गिरा हुआ साबित हुआ। बात पक्की करके भी नहीं आया। बड़ी दौड़-धूप के बाद एक सुयोग्य वर का पता लगाकर उसे उसकी संरक्षिका सहित यहाँ बुला लिया है। राज्य के ज्योतिषियों और पण्डितों ने जन्मपत्रियों का मिलान करके शुभलग्न का दिन भी निश्चित कर दिया है, अगले महीने की १७ तारीख। अब·····'

राजकुमारी········(अप्रतिभ होकर) 'काका, अभी इसकी क्या जल्दी है ? अभी मैं ब्याह न करूँगी।'

दीवान—'नहीं बिटिया, अब यह कैसे हो सकता है ?

तैयारियाँ आरम्भ हो गई हैं—सभी जगह निमंत्रण भेजे जा रहे हैं'.......दीप से नहीं रहा गया। दीवान के शब्द उसकी छाती पर हथौड़ी की चोट मार रहे थे। उठ कर जाना ही चाहता था कि दीवान ने रोककर कहा—

'कहाँ चले वकील साहब? सब कुछ तो आप ही को करना होगा। मैं बूढ़ा—कमज़ोर; किधर-किधर, क्या-क्या देखता फिरूँगा? खूब धूमधाम से मेरी रानी बिटिया का ब्याह करा दीजिये। मेरे काशी-वास के बाद आप ही तो राज्य के दीवान होने योग्य हैं।'

चोट-पर-चोट खाकर दीप तिलमिला उठा। दोनों हाथ उठाकर प्रणाम करने की मुद्रा में झट से बाहर हो गया।

८

दीप का मन और अशान्त हो गया। जी में आया फिर इस्तीफा देकर चल दूँ, और कभी न लौटूँ। किन्तु शीघ्र ही यह ख्याल बदल गया। सोचने लगा—'दीवान ने पहले मेरे ही साथ राजकुमारी के ब्याह का प्रस्ताव किया था। उस समय बात कुछ और थी। मैंने उसे देखा भी नहीं था। पर अब? अब तो न केवल देखा ही है, बल्कि........बहुत कुछ आगे पग बढ़ा चुका हूँ। तब? तब यहाँ से भागना कायरता है। लेकिन किसी दूसरे के साथ जो चन्द्रा के ब्याह की तैयारी हो रही है, इसका क्या होगा? क्या किसी भाँति रोका नहीं

जा सकता ।' इसी प्रकार की अव्यवस्थित विचारधाराओं में बहुत देर तक बहता हुआ—एकाएक कुछ निश्चय करके उठा और सफर की आवश्यक तैयारी करके नौकर से बोला—

'मैं एक बहुत जरूरी काम से जंगलटोला की कचहरी जा रहा हूँ, दरबार में कह आना' और फिर साइकिल द्वारा घने जंगल की ओर चल पड़ा।

दीवान ने सुना। उसके होठ में एक दबी-सी हिंसक मुस्कुराहट खेल गई। अपने एक खास दूत को बुलाकर—धीरे से कहा—

'जगदीश बाबू वकील जंगलटोला गये हैं। उधर अनेक बीहड़ पहाड़ियाँ, भयंकर जंगल, खोह, नदी-नाले हैं; हिंसक पशुओं का तो कहना ही व्यर्थ है।'........वकील की लाश का भी पता नहीं चल सकता, किसी पर सन्देह करना तो और भी कठिन है।........मेरा ख्याल है तुम समझ गये होगे।........इनाम की चिंता न करना।'

दूत—'जी मैं सब कुछ समझ गया।'

दीवान—'तो फौरन रवाना हो जाओ।'

दूत सर झुकाकर चलता बना। दीवान ने संतोष की साँस ली।

६

राजकुमारी चन्द्रावती जब तक राजसिंहासन पर नहीं बैठी

थी, अत्यन्त सुखकर और निर्द्वन्द्व जीवन बिता रही थी। सदा पढ़ना-लिखना, घुड़सवारी, व्यायाम, संगीत, विनोद। और अब? जैसे दूसरी दुनिया में आ गई। सारे हास-उल्लास समाप्त। रियासती झंझटों से जैसे बुढ़ापे का आक्रमण आरम्भ हो गया हो। दीवान काका तो सब कुछ देख-भाल करते ही थे—राज्य और राज्याधिकारिणी के संरक्षक की तरह। परन्तु कभी-कभी अनुभव होता, वह दीवान काका की गोद में खेलनेवाली बालिका नहीं, उनके विकट संकेत-सूत्र की कठपुतली मात्र है। क्या करती? अप्रत्यक्ष में असहाय थी, प्रगट में परवश। बाल-विकास पूर्ण होकर निज में अपूर्णता अनुभव करने लगा था। उसे प्रथम-प्रथम काशीघाट पर किसी की धूमिल छाया छू गई थी। जगदीश वकील के साक्षात्कार ने मिटती लकीरों में गहरा रंग भर दिया। चन्द्रा के भावी जीवन की कल्पनाएँ सहस्रों रंगीन धाराओं में लुकाछिपी की अठखेलियाँ करने लगी। जैसे उसने सच्चा सहारा पाया—पहले पहल जीवन के बाहरी ज्ञान में और अन्दर के अज्ञान में भी शायद। हाँ कभी-कभी जगदीश के कुल-वंश के बारे में वह असमञ्जस में पड़ जाती थी।

ज्योंही मालूम हुआ कि वकील साहब जंगलपुरी गये, वह घबरा गई। जैसे सैकड़ों बिजली के रंग-बिरंगी बल्बों के प्रकाश से झलमल रङ्गमहल में 'स्विच' फेल कर जाने से अचानक अन्धकार हो जाता है, उसी प्रकार राजकुमारी के हृदय में घोर अँधेरा छा गया। शीघ्र ही दीवान जी को बुलाकर कहा:—

'यह क्या बात है काका, वकील जगदीश एकाएक बिना सूचना दिए जङ्गल में क्यों चले गये ?'

'क्या बताऊँ बिटिया'—गले को साफ करके दीवान ने कहना शुरू किया—'अभी तक तुम्हें बताया नहीं, जगदीश छद्मनाम है। यह आदमी बड़ा ही धोखाबाज़ जालिया है। असल में यह वही विजयगढ़ का आवारा कुमार दीपनारायण........।' अचानक जैसे रङ्गमहल फिर जगमगा उठा हो, उसी प्रकार दीवान जी के इस शब्द पर चन्द्रा का मन-मन्दिर झलमला उठा। आश्चर्य्य, आनन्दातिरेक, और शंका से उद्विग्न हो उठी। पर, शीघ्र ही अपने को सम्भाल कर बोली—

'तब क्या करना चाहिये काका ? ऐसे व्यक्ति'—-

दीवान ने कुछ और ही समझ कर, बात काट कर बोला—

'हाँ बेटा, ऐसे व्यक्ति का क्या ठिकाना—क्या कर बैठे ? मुझे तो सन्देह हो रहा है कि कहीं वह जङ्गलियों के साथ षड्यन्त्र रचकर राज्य के विरुद्ध कोई भारी उपद्रव न खड़ा करे। क्योंकि जङ्गली सरदार से उसका मेल हो ही चुका है। मेरी राय में, उसकी गिरफ्तारी के लिये फौरन ही सैनिक भेजे जायँ।'

रानी ने उत्तर दिया—'नहीं नहीं काका, यह उचित न होगा। हमलोग चलें वहाँ शिकार खेलने। आदमियों का काफी इन्तज़ाम कर लीजिय। जैसा मौक़ा देखेंगे, उचित कार्यवाही की जायेगी।' दीवान क्षणभर सोच कर बोला—

'तो....मेहमानों को भी ले चला जाये । चन्द्रा बोली—
'क्या हर्ज है ।

× × × ×

मेहमान का मतलब पाठक समझ ही गये होंगे कि राजीव लोचन और उसकी मौसी से है । जब दोनों राजधानी में आए, तो राजसी ढंग से इनका स्वागत हुआ । राजमहल में राजकुमारी से परिचय कराया गया । राज्य के अतिथिगृह में बड़े आदर से ठहराये गये । दीवान जी प्रायः चेष्टा करते रहते कि राजीव राजकुमारी से हेल-मेल बढ़ाता रहे । कई बार उसे समझाया गया, पर नमक की पुतली को समुद्र की थाह लेने का साहस ही कैसे होता ? उसे दरबार के नाम से ही बुखार चढ़ आता । मौसी जी बहुत कुरेदतीं, तो रो-कलप कर कुछ दूर आगे बढ़ता, फिर हिम्मत हार कर किसी शराबखाने में ढुक जाता । और खुद लौटता भी नहीं, जब चपरासी-प्यादे जाते तब "मीनाघाटी रियासत के होनहार महाराज' को बेहोशी की हालत में उठा लाते । और जब जंगल में शिकार खेलने जाने को उसे तैयार किया गया तो उसका आत्मा कूँचकर गई । मौसी के पैर पकड़ कर बोला—

'मौसी, मैं बाज आया रानी ब्याह करके राजा बनने से । बाप रे बाप, भालू-सिंह से भरे जंगल में शिकार खेलने जाना होगा ? दुहाई है तुम्हारी 'जैसा हूँ वैसा ही रहने दो । लौट चलो कलकत्ता, नहीं तो...., मौसी ने देखा कि किनारे लगी नाव अभागा डुबोना चाहता है । आँखों में आँसू भर कर बोली—

'अच्छा, तुम जाओ कलकत्ता, मैं इधर गले में फांसी लगाकर न मर जाऊँ तो कहना।' मौसी ही राजीव की सब कुछ थी। उसके बिना वह कहीं भी अकेला नहीं रह सकता था। रियासती-रईसी ढोंग में पला, युवक होने पर भी वह बच्चे से भी गया बीता था। मौसी की आँचल तले सदैव खेलनेवाला युवक-शिशु उसकी मृत्यु की बात सुनते ही काँप उठा, और आर भी ओर से उसके पाँव पकड़ कर बोल उठा--

"अच्छा बाबा जो तुम कहोगी, वही होगा। कृपा कर मरने की बात मुँह से न निकालो।"

जंगल जाने के पहले दीप ने विजयकुमार को समीना घाटी आने के लिये जरूरी तार भेज दिया था। जब वह आया तो सब-के-सब शिकारगाह रवाना हो चुके थे। राजमहल में केवल लीला थी। मिलते ही दोनों मुस्कुरा उठे। वह अजीब-सी पहली मुलाकात कुछ अजीब तरह ताजा हो उठी। फिर तो दोनों घुल-मिल कर देर तक बातें करते रहे। राज्य की वर्तमान परिस्थिति, और दीवान के दाँव-पेंच पर भी सलाह-मशविरे हुए। तय हुआ कि नाजुक अवस्था में, हम लोगों को भी वहीं चलना चाहिये। नायब दीवान मुचकुन्द सिंह को राजधानी की देखभाल के लिये समझा बुझाकर, विजय और लीला जंगलीपुरी चल पड़े। और इस प्रकार, नकली कुमार

दीप और नकली कुमारी चन्द्रा रास्ता चलते-चलते किसी और ही मंजिल पर आ पहुँचे !

१०

जङ्गलपुरी के सरदार जङ्गी को ज्यों ही पता चला कि उसका अन्नदाता 'शिकार महल' में आया हुआ है, अपने सैकड़ों साथियों सहित आ पहुँचा और भक्तिपूर्वक 'देवता बाबू' कहकर दीप का स्वागत किया। इतने दिनों पर रियासत के एक उच्च कर्मचारी को अपना रक्षक जानकर जङ्गलियों की प्रसन्नता का पारावार न रहा। पर जैसे ही मालूम हुआ कि रानी और दीवान भी लाव-लश्कर के साथ आ रहे हैं, प्रतिहिंसा की भावना से पागल हो उठे। सब-के-सब गाँवों में फैलकर विद्रोह की तयारियाँ करने लगे।

दीप का मन अब और भी बेचैन हो उठा। सिपाही—पलटन के साथ रानी और दीवान का आना उसे नागवार गुजरा। रानी पर उसे भरोसा था, पर चक्रचाली दीवान के आतंक से सदा सशंकित रहता था। पर विवाह के नए आयोजन के प्रति रानीकी चुप्पी देखकर उसका मन उद्विग्न हो रहा था। यही प्रमुख कारण राजधानी से उसके भागने का था। और इसलिए वह रानी से भागना चाहता था। भाग चला जङ्गलियों के भीतरी गाँव की ओर—भयङ्कर पहाड़ियों और पथरीली पगडण्डियों से होते

हुए। दीवान का गुप्तचर घात में लगा ही हुआ था। अपने में डूबा दीप ज्यों ही एक घनी झाड़ी में पहुँचा कि फरसे का एक गहरा वार हुआ, और वह चिल्लाकर गिर पड़ा। पास ही के कन्दरे में कुछ जंगली परामर्श कर रहे थे। चिल्लाहट सुन कर झट से बाहर आ गये। गिरे हुए शिकार पर जैसे ही घातक ने दूसरा वार करना चाहा कि दौड़कर सब उस पर टूट पड़े, और काफी मरम्मत के साथ उसे बाँध, और बेहोश—घायल दीप को उठाकर सरदार के पास पहुँचे। अपने 'देवता बाबू' की ऐसी अवस्था देख, और घातक से सब हाल जानकर पहले से ही प्रतिहिंसापीड़ित जंगलियों का क्रोध और भी उबल उठा। जंगी ने जङ्ग का बिगुल बजा दिया। निश्चित सङ्केत के अनुसार गाँव-गाँव से हजारों की तायदाद में जंगल निवासियों ने 'शिकार महल' पर धावा बोल दिया।

दुपहरी के बाद का समय है। एक बड़े वटवृक्ष के तने से ढासना लगाये जंगलियों का गुरु जुगेसर काका बैठा है। पास ही बरछा ताने जंगी सरदार खड़ा है रोब के साथ। बीच में रानी, दीवान, विजय, लीला, राजीव, और उसकी मौसी तथा सिपाहियों को घेर कर कई हजार जंगली—हाथों में फरसा, भाला, धनुष कमान लिए—खड़े हैं—बातचीत चल रही है।

जुगेसर—'हाँ तो दीवान अब' सिर्फ यह बता दें; मीनाघाट की प्रजा—खास कर हम लोगों—पर किसके हुक्म से अत्याचार होता है ?'

जंगी—'बस, यही आखीरी सवाल है। इसके बाद जो होना है, वह होकर ही रहेगा। अब तक तुम लोग हमारे भाग्य का फैसला करते रहे, आज हम लोग तुम्हारे भाग्य का फैसला करेंगे।'

दीवान थका हुआ—परेशान नज़र आ रहा था। जङ्गलियों के प्रश्नों के उत्तर देते-देते नहीं शायद, बल्कि अपने को हर तरह अपमानित और हर तरह घिरा हुआ पाकर। उसका सारा क्रोध, अभिमान, रोब, राज्याधिकार—मद जैसे लुप्त हो चुके हों। खूं-ख़ार शेर लाचार हो चुका था। सबसे दुख की बात उसके लिये यह हुई कि रानी की आज्ञा से सेना ने हथियार डाल दिये थे। दीवान आखिरी झपट्टे की सोच रहा था। जंगी ने कड़क कर फिर पूछा—

"क्यों दीवान जवाब देते हो या नहीं ?"

जुगे०—'नहीं तो हम तुम्हारी इस चुप्पी को ही जवाब समझ लेंगे !'

विषदन्त तोड़े हुए नाग की तरह—धीरे-धीरे सर उठाकर—शायद जीवन में पहली बार—कोमल आवाज में—दीवान ने अन्तिम ब्रह्मास्त्र छोड़ा—'भाइयो, मैं आपके इस सवाल का क्या जवाब दूँ ? मछली फँसानेवाली बंसी की डोरी रहती है शिकारी के हाथ में। मछली का भोग लगाता है वही या उसके अपने—सगे, लेकिन बंशी बेचारी सिर्फ बँधी हुई होने के कारण बदनाम

है वही हाल किसी राज्य के दीवान या मंत्री का है। आप—हमारे—जंगली भाई इतने नासमझ नहीं कि इतनी मोटी सी बात भी न समझें।'

दीवान के इस कूट-उत्तर से जंगलियों में एक विचित्र हलचल मच गई! हर तरफ़ काना फूँसी और धीरे-धीरे वाद्-विवाद का हलका कोलाहल होने लगा। जंगी जोर से कुछ बोला। इस पर फिर वही सन्नाटा छा गया।

जुगे०—'तो तुम जो कुछ भी करते हो, किसी के हुक्म से?'

दीवान—'तो क्या मीनाघाट का राजा मैं हूँ जो अपने हुक्म से कुछ करूँगा?'

जुगे०—"घुमाकर कहना छोड़ो; साफ़-साफ़ बतलाओ कौन है जिसका इस राज्य में सब तरह का हुक्म चलता है?'

दीवान—(झिझकते हुए रानी की ओर बताकर) 'रानी को छोड़कर और कौन हो सकता है?'

इसके बाद जङ्गी के ताली बजाने पर एक ओर से घातक को बाँधे हुए दो जङ्गली और सर तथा हाथों में पट्टी बाँधे दीप ने प्रवेश किया। दीवान की रही-सही आशा भी जाती रही। उसका दाँया हाथ पाकेट से जा लगा। दीप ने मुस्कुराते हुए कहा—

'जय हो दीवान जी, एक सवाल मेरा भी है। क्या यह घातक भी रानी की आज्ञा से ही मुझे मारने को आपने भेजा

था ।' इस पर दीवान ने झट पाकेट से पिस्तौल निकाल कर दीप पर चला दिया । साथ ही जंगी सरदार का बरछा भी चमका । गोली सनसनाती हुई बेलाग निकल गई, किन्तु बरछा खच् से दीवान की छाती फोड़कर पीठ में निकल गया । अभागा आह भी न कर सका, सारे दाँव-पेंच को समेटकर कटे वृक्ष की तरह गिर पड़ा ।

११

कहानी खत्म हुई । और जो शेष हो, पाठक कल्पना से पूरी कर लें ।

डबल-डाका

असहयोग-आन्दोलन के आरम्भ में जब क्रान्ति-दलवाले अपनी गुप्त कार्यवाहियों से हलचल मचाए हुए थे, उस समय के एक 'इन्फौर्मर' जो स्वदेशभक्तों के विरुद्ध ब्रिटिश-पुलिस को गुप्त खबरें पहुँचाया करता था, की मजेदार कहानी है, १९२५ के 'हिन्दूपञ्च' कलकत्ता, में प्रकाशित हो चुकी है।

—एक—

आज शहर में अजीब हलचल है। लोगों की जबानों और कानों पर एक ही चर्चा है। चौक से झील की ओर जो सड़क गई है, उस पर सैकड़ों की भीड़ लपकी जा रही है। मोटरों, साइकिलों, तांगों और गाड़ियों का तांता बँध रहा है। असलियत जानने की इच्छा से एक परदेशी ने चौक के एक हलवाई—जो तीन-चार साथियों सहित गांजे का दम लगा रहा था—से पूछा—'भाई यह कैसी चहल-पहल है?' उसने उत्तर दिया—'अजी महाशय, डाकू पकड़े गये हैं। नगर के नामी दारोगा भुटकुन सिंह और उनके नायब ने पकड़ा है उन्हीं को देखने लोग दौड़े जा रहे हैं। (दम मारकर) हम भी घटनास्थल से ही आ रहे हैं। बड़े जबरदस्त डाकू हैं साहब! पूरे पचहत्थे जवान—डेढ़ डेढ़ बालिस की मूँछें—हाथों में साढ़े तीन-तीन हाथ के पिस्तौल हैं और............'

परदेशी बात काट कर बोला—'साढ़े तीन हाथ के पिस्तौल? यह तो बन्दूक से भी बड़ी हुई!'

हलवाई—'नहीं जी, है तो पिस्तौल ही। बात यह है कि जैसे जवाँमर्द डाकू वैसे ही उनके हथियार भी हैं।'

हलवाई का दूसरा साथी बोला—'जमादार साहब कह रहे थे, बड़ी मुश्किल से असामी पकड़े जा सके हैं।'

परदेशी—'आप लोग बता रहे हैं, डाँकू पचहत्थे जवान हैं फिर गिरफ़्तार किस तरह हुए? क्या आप लोगों ने आँखों से देखा?'

हलवाई—'तो क्या झूठ कह रहे हैं। अभी घण्टा भी तो पूरा नहीं हुआ है। हम तीनों साथी झील से स्नान कर लौट आ रहे थे कि पास के जङ्गल से गोली छूटने की आवाज आई। दौड़कर वहाँ पहुँचे तो देखकर दङ्ग रह गये।'

परदेशी—'क्यों, क्या देखा?'

हलवाई का दूसरा साथी—'देखने का ताब ही कहाँ रहा भाई साहब! (दम लगाकर) दिमाग़ ही चकरा गया।'

तीसरा साथी—'वाह, डाकुओं के बहत्तर नली पिस्तौल के निशाने को, दारोग़ाजी के एक-सौ-पच्चीस नली वाले पिस्तौल के निशाने किस सफ़ाई से काट रहे थे कि वाह रे वाह!!'

जिज्ञासा-तृप्ति के बदले, गँजेड़ियों की बेसिर-पैर की बातों से बेचारा परदेशी घबरा कर उठ खड़ा हुआ। मसखरों ने शिकार हाथ से निकलता देखकर बोल कसना शुरू किया—

हलवाई चिल्लाया—'यही है, यही है, पकड़ो जाने न पावे—'

दूसरा साथी—'रस्सा तुड़ाकर भागा जा रहा है।'

तीसरा साथी—'काटेगा, बाँध दो खम्भे में।'

अब तो परदेशी को भागने के सिवा दूसरा चारा नहीं रहा। लपका बेचारा एक ओर। गँजेड़ियों ने भी

जोरों से चिल्लाना शुरू किया। झील की तरफ़ झटकती हुई भीड़ का एक हिस्सा इस ओर भी आकर्षित हुआ। सबकी दृष्टि भागते परदेशी और गँजेड़ियों की ओर जमने लगी। लोग रुकने लगे। सड़क जाम हो गई। इतने में ही, उधर से, बड़े जोरों से टनटनाती हुई साइकिल की घंटी और घबराये हुए कर्कश स्वर से 'बचो' 'हटो' की आवाजें सुनाई दीं। जब तक लोग बचें-सम्हलें कि धक्कों से बल खाती, लोगों को ठोकरें लगाती हुई एक साइकिल धड़ाम से हलवाई की दूकान से जा टकराई। और उसके डबल—अलबेले सवार मिठाई के ढेरों का भुरकुस बनाते, थालों को झन-झनाते, तख्तों को उलटते-पलटते धमाके से तले-ऊपर-नीचे की नाली में जा पड़े। ठहाकों की गोलेबारी छूटने लगी। कठिनाई से लोगों ने दोनों सवारों को उठाया। एक थे दारोगा भुटकुन सिंह। तमाम वर्दी कीचड़ में सन गई थी। साफ़ा अंजर-पञ्जर ढीले किए हुए दर्शकों का फुटबाल बन रहा था। साइकिल बेतरह जख्मी होकर उत्सुक भीड़ के पैरों को जख्मी बनाती पड़ी थी। दूसरे सवार थे दारोगा जी के गोयन्दा पं० नरछुत तिवारी। दोनों के सर, कन्धों, कमर, और टांगों में कड़ी चोट आ गई थी। शरीर कई स्थानों पर खुरच गया था। कहीं-कहीं से खून भी बहने लगा। फौरन ही पुलिस के कई जवान आ गये, और घायल देवता को दूत सहित उठा ले जाकर सेवा-शुश्रूषा करने लगे।

—दो—

श्रीमान् नरछुल तिवारी 'अपटुडेट'—प्रदर्शनी के एक खास जीव हैं। वैसे पढ़ने-लिखने से आपका उतना सरोकार नहीं रहा, मगर अंगरेजियतके ऊपरी क़ायल जरूर हैं। मतलब यह कि वेष-भूषा, बोल-चाल और ढङ्ग-ढब में तिवारी जी अंगरेजों की नक़ल की नक़ल उतारने की सदैव असफल चेष्टा करते रहते हैं। प्रायवेट खान-पान भी कुछ वैसा ही है। हलाँ कि इसमें आपका विशेष खर्च-वर्च नहीं होता। बा० भुटकुन सिंह दारोगा खिलाये जाते हैं। परन्तु हैं आप ब्राह्मण सपूत। घर पर स्नान, टीका-चंदन, पूजा-पाठ के अतिरिक्त लघुशंका आदि के समय कानपर जनेऊ चढ़ाना बहुत कम भूलते हैं। इनके पिता पण्डित हिरामन तिवारी यजमानी-वृत्ति के अलावा, कुछ वैद्यक का कारोबार भी कर लेते हैं। छोटे तिवारी प्रगट में तो बाजार की अनेक वस्तुओं दलाली करते हैं, परन्तु गुप्त रूप से पुलिस में 'इन्फोर्मर' हैं—दारोगा भुटकुन सिंह के तो खास गोयन्दा हैं। इसलिए, इधर-उधर की छोटी-से-छोटी खबरें भी अपने सरदार को पहुँचाने में नहीं चूकते। कभी-कभी अपना उल्लू सीधा करने के लिये, निरपराधों को भी आप सताने से बाज नहीं आते। किसी को किसी से बदला लेना है, बस तिवारी जी उसके काम आ जाते हैं। इन कारणों से लोगों का नाक में दम हो रहा है।

पुलिसके भय से, प्रतिकार का कोई उपाय किसी से नहीं

बन पड़ता। इसीसे तिवारीजी की तिकड़म का सितारा खूब तेजी पर है। अन्त में जब हद हो गई तो कुछ मनचले साहसी युवकों ने आपस में विचार-विमर्श करके एक मजेदार उपाय सोच लिया।

—तीन—

होली की नशीली संध्या का सुहावना समय था। उन्मत्त वायु की हलकी लहरियाँ पेड़, पौधे, पुष्पों और कलियों के साथ कुछ अजीब ढंग से अठखेलियाँ कर रही थीं। आकाश-पट पर मिलन और वियोग का अपूर्व दृश्य अंकित हो रहा था। बालिका-निशा ने बिछुड़ते से—निस्तेज दिनपति का दामन दबोच रखा था। श्याम और गौर के इस अद्वैत-आनन पर मानो अबीर की लाली निखर रही थी। कवियों और प्रेमियों के दृष्टिमात्र में यह स्वर्गीय-सुषमा जैसे प्रसाद बाँट रही हो। परन्तु, कीच-काँटों को इसकी क्या खबर? पंडितप्रवर तिवारी जी महाराज भी अपनी धर्म-धुन में ध्यान लगाये, इसी समय घोंसले के बाहर निकले। अपने पूज्य पिताजी द्वारा शकुन-लग्न देखकर चले थे। इष्ट-देव का मन-ही मन जाप करते जा रहे थे कि आज कोई खासा शिकार फँसे। जैसे ही अपनी गली से सड़कवाली गली में घूमे कि एकाएक दो व्यक्ति बगलियाकर उनके आगे झट से निकल गये। तिवारीजी की जासूसी-चेतना तेज हो गई। उनके पीछे चुपके-चुपके चल पड़े। कुछ ही दूर आगे जाने

पर वे दोनों एक खाली मकान के दालान में घुस पड़े। तिवारीजी ने दीवार की आड़ से, जरा-सा झाँककर देखा। दोनों कपड़े बदलकर, चेहरे में नकली दाढ़ी-मूँछ लगा रहे थे। ये फुर्ती से पीछे हट गये! इनके जी में जोश का तूफान आपे से बाहर होने लगा। इतने में ही दोनों व्यक्ति वहाँ से निकल कर आगे बढ़े। तिवारी जी धड़कते कलेजे को दबाकर, गुप्त रूप से लगे उनका पीछा करने। कई गलियों और सड़कों को पार कर वे एक उजाड़ मुहल्ले के एक मकान में घुस गये और द्वार भीतर से बन्द कर लिया। तिवारीजी भी धीरे-धीरे जासूसी चाल से चलते हुए किवाड़ से कान लगाकर खड़े हो गये। अन्दर, दोनों में इस प्रकार बातें होने लगीं।

एक—'अच्छा हुआ किसी ने हम लोगों पर सन्देह नहीं किय।'

दूसरा—'सन्देह करता कैसे? हम लोग सावधानी से जो चल रहे थे। अच्छा भई, यह तो बतलाओ, नरछुरा तिवारी सचमुच पुलिस का गोयन्दा है?'

दूसरा—"हाँ, भुटकुन सिंह दारोगा को, इधर-उधर की खबरें पहुँचाता है।"

एक—"तब तो, उसे भी खत्म करना होगा।"

दूसरा—"जरूर करना होगा। मगर, पिस्तौल चलाने का अभ्यास कर लेना चाहिये।"

एक—"सोच लिया है, कल ठीक दस बजे दिन में हम

लोग सिकन्दरपुर के झीलवाले जंगल में चलें। वहीं गढ़े के पास चानमारी की जाय।"

दूसरा—"मगर गोलियों की आवाज सुनकर कोई आ जाये तो?"

एक—"ऊँह! एक तो वह स्थान शहर से दूर है, तिस पर मीलों तक जंगल ही जंगल है। अगर कोई आया भी तो ऐसा गायब हो जायेंगे, कि पता लगाना मुश्किल।"

दूसरा—'बस, तब यहाँ ठीक रहा।"

बाहर, तिवारीजी की हालत खुशी, डर, आश्चर्य और उमंग के मारे बदतर हो रही थी।

"ओह! ऐसी रहस्यपूर्ण खबर! जूते खोलवाऊँगा आज भुट-कुन से!" उद्वेग के मारे शीघ्रता से, उड़ते हुए चल पड़े। अँधेरा काफ़ी हो चुका था। रास्ता ठीक से नहीं सूझता था। मगर तिवारी जी के पैर की लगाम बेतरह ढीली हो पड़ी थी। कुछ दूर आगे चलने पर एकाएक एक जगह की ऊबड़-खाबड़ में आपका चरण-कमल इस तरह फँसा कि धड़ाम से उलट कर जमीन सूँघने लगे। चोट भी काफी लगी। टाँगों में मोच आ गयी। मगर, उत्साह के वेग में तकलीफ को उड़ंछू कर सम्हल कर फिर आगे बढ़े। सोचते चले कि "ऐसी अद्भुत खबर है। चलूँ, सीधे कलक्टर साहब के पास। नहीं नहीं; पुलिस के बड़े साहब के पास ही चलना ठीक है।"

फिर ध्यान आया कि "मुदकुन दारोगा से इतने दिनों की—खाग कर दस्तरखानी—दोस्ती है। बेचारे का नाम हो जायेगा; ईनाम मिलेगा। मेरी भी चाँदी रहेगी। चलूँ उसे ही खबर दूँ।"

यही सोचते हुए आप जैसे ही गली पार कर सड़क पर आना चाहते थे, कि कूड़े की टीन से वेतरह टक्कर खा गये। जब तक सम्हलें, तब तक औंधे मुँह गिर पड़े, और ऊपर से टीन का सारा कूड़ा फैल गया। मारे बदबू और चोट के बेचारे अधमरा हो गये। कुछ सेकण्डों तक उसी तरह प्राणायाम करते रहे। फिर, झाड़-झूड़ कर किसी तरह खड़े हुए। तबीयत झुंझलाई, तो लगे म्युनिसिपेल्टी वालों का गोत्रोच्चार करने। तकलीफ के मारे उड़न-चाल से चलना कठिन मालूम पड़ा। मगर, ध्यान में आया कि जासूसी—कहानियों में इससे भी बढ़-चढ़कर जासूसों पर कठिन विपत्तियों की बातें पढ़ी हैं तब मन को दिलासा देने और गर्व अनुभव करने लगे। उत्साह की स्फूर्ति आ गई। फिर सोचा, घर से कपड़े बदल लूँ, तब दारोगा जी के यहाँ चलूँ। मगर थे आप अक़िल के पटपट। ख्याल आया, कि इसी तरह चलने से कुछ और ही प्रभाव रहेगा। बस, सीधे मुंह फेरा थाने की तरफ़।। जैसे ही कुछ दूर आगे बढ़े कि एक लड़के ने जो इनकी विचित्र सूरत देखी तो डर के मारे 'भूत-भूत' चिल्ला उठा। चिल्लाहट सुनकर, पास-पड़ोस के और कुछ राहगीरों ने इन्हें घेरा। तिवारीजी नई आफ़त देख कर भाग चले। लोगों ने खदेड़ना शुरू

किया। ग़नीमत हुई कि थोड़ी ही दूर पर दारोग़ाजी का मकान था। तिवारीजी बेतहाशा दौड़ते हुए उस कमरे में जा पहुँचे, जिसमें दारोग़ाजी का लड़का स्कूल का पाठ याद कर रहा था। इनको एकाएक भूत की तरह पहुँचते देख, वह जोरों से डर कर चिल्ला उठा। उसी समय बाहर की भीड़ ने भी पहुँचकर हल्ला मचाना शुरू किया—"भूत है भूत। चोर है, चोर—दारोग़ा जी!" तब तक कई नौकर, सिपाही और खुद दारोग़ाजी दौड़ पड़े और भूत को पछाड़ कर उसका भुरकुस निकालने लगे। तिवारी कँहर कँहर कर चिल्लाने लगे—"बाप रे बाप दादा रे दादा—दारोग़ाजी बचाइये......हम हैं तिवारी......।" दारोग़ा ने ग़ौर से पहचाना तो बोल उठे। "ओह, बड़ा धोखा हुआ; छोड़ो छोड़ो, यह तिवारी हैं......हमारे खास आदमी।"

तब तक नरछुत की काफी दुर्गति हो चुकी थी। इतनी कस कर मार पड़ी कि न पूछिए। दारोग़ा ने सोचा, कम्बख्त को मरना ही था तो मेरे यहाँ क्यों आया। घबराकर डाक्टर को बुलवाया। मरहम-पट्टी की गई। टॉनिक-डोज के अलावा इन्जेक्शन भी किया गया।

कुछ देर बाद, तिवारी जी की तबीयत कुछ हरी हुई। तब बड़े तपाक के साथ यथोचित नमक-मिर्च मिलाकर सारी बातें सुनाने लगे। सुनते ही दारोग़ा जी खिल गये। दोस्त को गले

लगा लिया। इसके बाद दोनों बहुत देर तक मन्सूबे बाँधे और मन के लड्डू खाते रहे।

दूसरे दिन सबेरे आठ ही बजे जङ्गल में गुप्त पहरा पड़ गया। दारोग़ा जी और तिवारी जी पिस्तौल लिये मौक़े की ताक में रहे। जमादार तथा १५ सिपाही, लम्बी लाठियाँ पकड़े छिट-पुट दबके हुए थे। ठीक दस बजते-बजते, दो नवयुवक झीलवाली पगडंडी से जङ्गल के बीचवाले मैदान में पहुँचकर इधर-उधर देखते हुए गड्ढे के किनारे जा बैठे, और मेढकों का तमाशा देखने लगे। फिर पाकेट से पिस्तौलें निकालकर दोनों ने अपने-अपने बग़ल में जमीन पर रख लिया। बड़ी सावधानी से धीरे-धीरे पंजों के बल चलकर सिपाहियों ने एकाएक नवयुवकों को धर दबाया। दारोग़ा और तिवारी ने दोनों की मुश्कें कस लीं। पिस्तौलों को बिना जाँचे-समझे, बड़ी सावधानी से रूमाल में लपेट लिया गया। फिर निश्चय हुआ कि बड़े साहब को झट से खबर दी जाये, तब तक डाकू यहीं, कड़े पहरे में रहें। ऐसा ही किया गया।

जमादार सिपाही पहरे पर रहे, और तिवारी को पीछे लादकर दारोग़ा जी साइकिल पर उड़ चले। तब तक न जाने कैसे बिजली की तरह शहर भर में इस अनोखी घटना की ख़बर फैलने लगी थी। उत्सुक जनता की भीड़ घटनास्थल की ओर उमड़ उठी। उसी में डबल-साइकिल सवार की कलाबाजी का दृश्य पहले ही देखा जा चुका है।

पुलिस के बड़े साहब को जैसे ही ख़बर हुई, फौरन मोटर द्वारा

असामी को थाना पहुँचा आए। अस्पताल में भुटकुन और तिवारी से मिलकर बड़ी प्रसन्नता प्रगट की। साथ ही तरक्की और ईनाम का आश्वासन भी दिया।

—पाँच—

दूसरे दिन पेशी हुई। आज दारोगा जी और तिवारी जी का क्या पूछना! मानों आकाश पर चढ़ रहे हों। इनकी आज की अनोखी मुद्रा का वर्णन करना किसी मसखरे कवि का ही काम है। दारोगाजी ने बड़ी सावधानी से साफा बाँधा। तोंद की शरारत और कुछ जल्दीबाजी से, रह-रहकर कोट के बटन खुल जाने लगे, तो आप बड़े झुँझलाए। दो चार हलैया सुना दीं। चलते समय दारोगाइन ने बहुत दिनों की चुप्पी के बाद मुसकराहट के नजराने के साथ अपने हाथ से पान चभाया। दारोगाजी घोड़े पर सवार होकर कचहरी चल पड़े। इधर तिवारी जी ने विचित्र फैशन में अपने को सजाया। चुस्त पाएजामे के ऊपर काले रंग का हींस पायतावा चढ़ाया। आँखों में बूढ़ी चाची से काजल कढ़वा कर रंगीन चश्मा लगाया। गले में रेशमी रूमाल लपेटा, माथे में चन्दन पर लाल बिन्दी चमकाई। कन्धे पर दादा जी के समय का रंगीन दुशाला, हाथ में मिर्जापुरी लट्ठ, और सिर पर हैट रखा। यह इसलिये कि धूप कड़ी थी। छाता बाबूजी कहीं ले गये थे। मगर पाकेट में मोड़-माड़ कर फिल्डकैप भी रख लिया, कि इजलास पर जाते ही हैट उतार कर इसे पहन

लूँगा। घर की प्रदर्शिनी का एक खास नमूना—उनके पिताजी का विवाहवाला कामदार दिल्लीवाला जूता था; बस उसे पहनकर, एक बार आईने में अपना नूरानी चेहरा और लासानी फैशन देखकर गद्गद् हो गये। बाजार में रोब के साथ इधर उधर ताकते चले। लोग इनकी विचित्रता पर—इनकी ओर देख कर मुस्कुराते, तो यह उन्हें मूर्ख समझते थे कि 'आज मेरा फैशन देखकर सभी दाँतों उँगली काट रहे हैं। मगर अभागे नहीं जानते कि यह मेरा खास खुफिया वेश है।' अँकड़ते हुए कचहरी पहुँचे।

इजलास के बाहर भीड़ का क्या कहना है! डाकुओं को देखने के लिये जनता का जैसे नर-समुद्र उमड़ उठा हो। पुलिस को रह-रह कर लाठीचार्ज करने तक की नौबत आ जाती थी। इजलास के अन्दर भी तमाम बेंचें भरी थीं। प्रेस-रिपोर्टरों के अलावा, अनेक सम्भ्रान्त दर्शक भी मजिस्ट्रेट की आज्ञा लेकर कार्यवाही देखने-सुनने आये थे। जैसे ही आसामी पुलिस के कड़े पहरे में लाये गये, बहुतों ने युवकों को पहचान लिया। एक था प्रो० रमेश चन्द्र का लड़का दिनेश, दूसरा सुप्रसिद्ध वकील चन्द्रशेखर नारायण का लड़का शशांकशेखर था। दोनों कालेज के चुने हुए विद्यार्थियों में से, और नवयुवक नाटक समिति के प्रमुख पात्र थे। मुस्कुराते हुए युवकों ने परिचितों को प्रणाम किया। उन लोगों ने समझा शायद ये लड़के क्रान्तिदल में होंगे। तब तक पेशी शुरू हो गई। मजिस्ट्रेट ने अभियुक्तों के नाम-धाम-काम

पूछे। पेशकार ने रूमाल से खोल कर पिस्तौलों को साहब के सामने कर दिया। साहब ने युवकों से पूछा—"इन्हें कहाँ से लाये ?"

एक युवक—"नवयुवक नाटक समिति से !"

मजि०—"जंगल में क्या करने गये थे ?":

दूसरा युवक—"एक नाटक का रिहर्सल करने !"

मजिस्ट्रेट ने एकाएक पिस्तौलों में क्या देखा कि भड़क उठे "डैम....इन्सपेक्टर, नकली पिस्तौल हैं ? असामी रिहा......."

सनीचर देवता की पूजा

समाज के एक सनीचर देवता की मनोरंजक-पूजा का सुन्दर वर्णन है। 'जागरण', 'काशी' और 'मारवाड़ी अग्रवाल', कलकत्ता, में प्रकाशित।

[प्रथम विधि]

सेठ भमधूमर लाल जी, ऊपर से नीचे तक जिस प्रकार कुछ स्थूलकार्य हैं, उसमें कहीं चढ़-बढ़ कर उनमें बुद्धि का अजीर्ण है। हाथी के बच्चे की तरह छोटी-छोटी टाँगों के ऊपर मटकेसा पेट, दरियाई कमण्डल की तरह सिर, उर्दू कविता की नाज़नीन की कमर की तरह गरदन नदारद। और इसी प्रकार मुँह, नाँक, आँख, कान, भौंह आदि की भी अजीबो-ग़रीब-गठन देखने ही लायक़ है। विधाता की हास्यप्रियता का खासा नमूना-मानव-प्रदर्शन की अद्भुत वस्तु ही समझिए। जिस समय वसुन्धरा की सूखी छाती पर, आपके युगल चरण रोलर की तरह लुढ़कते हैं, वर्णन से बाहर—दर्शनीय दृश्य होता है। जिस समय खुले बदन आप साँस लेते या कहीं सौभाग्य से हँस पड़ते, तो पेटरूपी मटके की तूफानी उछल-कूद भूमण्डल के भूकम्प की संक्षिप्त संस्करण बन जाती। चलना आपके लिए जितना कठिन था, उससे बैठना कहीं कष्टकर था। हरदम लाश की तरह पसरे ही रहते थे। पुराण-प्रसिद्ध-समाधिस्थ योगियों की जटाओं की तरह, आपके बालों, वस्त्रों और बिछावन वगैरह में अनेकानेक कीटाणु-कीट बारहों मास क्रीड़ा करते रहते। लोगों को आप इतने अधिक याद हैं कि सबेरे-ही सबेरे नाम तक लेना अनुचित समझा जाता है और अगर कहीं दर्शन हो जाये तो दर्शनार्थी समझ लेता है कि उस दिन के पापों का उसी दिन भरपूर प्रायश्चित हो जाएगा। समाज-सुधार के आप सवा-सोलह आने सनीचर हैं। सामयिकता और आधुनिता से

आपको उतनी ही सख्त नफरत है, जितनी सफाई और फिजूल खर्ची से। सामाजिक-यातना-यम लोक के आप एक दबंग-दूत हैं। कंस के अत्याचारों की तरह रूढ़िवादी-क्रूरताओं की श्रीवृद्धि के लिये आप इस समय की बारदीय विभूति हैं। समाज का गला आपने इतने जोरों से टीप रखा है कि उसका नाश और पुनर्जन्म निश्चित है। आपकी जबान और सलाह में वह डंक है, जिसका उपचार नहीं। आपके इस भयानक दर्शन से कितने ही बेमौत मरे—और प्रायः मरते रहते हैं। ब्याह में, श्राद्ध में, पञ्चायत में, काम में-काज में, मतलब यह कि प्रत्येक व्यावहारिक परामर्श में आपके नक्कारखाने के आगे दूसरों की तूती की आवाज मन्द पड़ जाती है। यही कारण है कि बिरादरी में आपकी पूरी धाक है। सभी डरते रहते हैं। मगर कुछ आप ही सरीखे कूढ़-मगजों को छोड़कर, दूसरे सभी लोगों का दिल भीतर-ही भीतर त्रसित हो उठा है। खास कर नवयुवक-समाज आपको फूटी आँख नहीं सुहाते। उससे कहीं अधिक उनकी आँखों में आप भी जहरीले तीर हैं। बिचारे नवयुवक मन मसोस कर रहते, और अपनी असमर्थता पर चार आँसू रोते। कभी-कभी संघर्ष भी हो जाता। आखिर नया खून ही तो ठहरा। तिस पर क्रान्ति का जमाना!!—बिचार होने लगा कि अब दूसरे हथियारों से काम लिया जाय।

जगदीश ने कहा—"यार! यह मूजी तो बड़ा अनर्थ कर रहा है, कुछ उपाय होना चाहिये।"

कैलाश ने कहा—"खूब बनाया जाये बच्नू को, ऐसा कि जन्म भर याद रखें।"

रामप्रताप ने कहा—"हाँ भाई, हमलोगों की सभा-समितियों को कभी एक पैसा नहीं देता, उलटे विरोध करता रहता है।"

सोहन ने कुछ देर तक सोच कर कहा—"

"अच्छा तो रहे इस बार होली में। रुपये भी वसूल किये जायें और छकाया भी जाये ऐसा कि कम से कम कुछ दिनों तक तो डंक अवश्य ही कमजोर पड़ जाये।"

(दूसरी विधि)

दिन भर उपद्रव मचा लेने के बाद रात को चढ़ती जवानी में होली को आग जलाकर बाजारके लोग 'नवयुवक समिति' का नाटक देखने लगे। करीब साढ़े तीन बजे राज में अभिनय समाप्त हुआदर्शक होलैया गाते, पारस्परिक छेड़छाड़ करते, सोतों को जगाते, अपने-अपने घर जाने लगे। पर्दे और नाटकीय सामान वगैरह यथास्थान सरिया देने के बाद, सोहन भी अपने चञ्चल सखाओं के साथ, घर रवाना हुआ। सेठ धमधूसर लाल का सब से छोटा लड़का तिकौड़ीलाल भी, मण्डली की तबीयत बहलाता जा रहा था। प्रातः काल की सुफेदी छिटकने में अभी देर थी। कुछ अँधेरा था। थोड़ी दूर साथ चलकर अधिकांश लड़के अपने-अपने घर चले गये। सोहन और उसके तीन चार साथी जिनके मकान उधर ही थे, धमधूसर लाल के पास वाली गली में पहुँचे।

तिलौंड़ी लाल को अपने दरवाजे की ओर बढ़ते ही पैरों में किसी ठंडी चीज़ का स्पर्श हुआ। उसके मुँह से एक हलकी सी घबराहट की आवाज़ निकली। सब चौंक गये। प्रकाश ने टार्च का प्रकाश किया। देखा गया कि यह चीज़ सफेद कपड़े में खून से तरबतर कोई लाश की तरह है। अब तौतिलौड़ी की दहशत का क्या पूछना! चिल्ला उठा। इतने ही में ऊपर की खिड़की खोल कर उसके बाप ने पुकारा—कौन है? सोहन ने आवाज़ दी—"जरा नीचे उतरिए, भारी घटना हो गई है।" क्षण-भर में हाँफते-लुढ़कते सेठजी आ पहुँचे। टार्च की रोशनी में जैसे ही उनकी दृष्टि लाश पर गई तो मारे भय के इस तरह पीछे हटे कि गिरते-गिरते बचे, और मुँह से एक कर्णकटु चीख निकल पड़ी। प्रकाशक ने कहा—"सेठजी, यह क्याबात है? अगर आपने किसी को ऐसा दण्ड दिलवाया है, तो लाश कहीं दूसरी जगह फेंकवा देते।" घबराते हुए बात काट कर उन्होंने कहा—"अरे छोकरा, तू मुझे फँसाना चाहता है? भगवान् जानते हैं—गङ्गा की शपथ, मैं कुछ नहीं जानता।"

सोहन—मगर जनता और पुलिसवाले तो यह सब कुछ नहीं समझेंगे। आपके मकान के पास लाश मिली है, इसलिए सबों का सन्देह आप ही पर होगा।"

किशोरी—"और हम लोग झूठ बोलेंगे नहीं, सच-सच बताना ही पड़ेगा, नहीं तो आफ़त आ सकती है।"

अब तो मारे भय के धमधूसरलाल की जान निलने लगी। बिचारे दरवाजे पर धम से बैठ गये, और दोनों हाथों सिर दबाने लगे। सोहनने प्रकाश से कहा--"जाओ, दौड़ते हुए थाने में। खबर दो कि यहाँ खून हो गया है।" प्रकाश जाना ही चाहता था कि सेठजी ने मेढक की तरह छलाँग मार कर पकड़ लिया, और बोले--"नहीं बेटा, ऐसा मत करो। मैं कहीं का न रहूंगा। पुलिस को न बुलाओ, किसी तरह लाश को हटा दो; जो कहोगे, करनै को तैयार हूँ।"

सोहन--"हाँ, इस समय वक्त पड़ा है तो क्यों न ऐसा कहियेगा। आप बराबर हमलोगों का--क्या, सभी अच्छे कामों का--विरोध करते आ रहे हैं। हम सेवासमिति के बालचर हैं, इसलिये पुलिस को तो बुलाना ही पड़ेगा। जाओजी प्रकाश, जल्दी खबर दो।" प्रकाश फिर उद्यत हुआ। अब तो सेठजी की बड़ी दयनीय दशा हो चली। उन्होंने सोहन और प्रकाश को पकड़कर बड़ी आजिजी से कहा--"देखो बेटा' तुम्हारे पिता से मेरी कितनी घनिष्ठता है। अब से मैं कभी तुम लोगों का विरोध न करूँगा....।" इतना कहते-कहते रोआसे-से हो गये। किशोरी को जैसे दया आ गई। उसने कहा--"सोहन भाई, जब यह इतना गिड़गिड़ा रहे हैं, तो ऐसा उपाय करो जिसमें यह भी बच जायँ और हमलोगों पर भी कोई आफत न आवे।"

बेजू ने कहा--"मगर कोई बखेड़ा आ ही जाय तो....?"

प्रकाश—"आखिर, जो मरा है, उसके घरवाले पता लगावेंगे ही। फिर तो हमलोगों को आफत में पड़ना ही पड़ेगा।"

सोहन—"एक उपाय है। अगर सेठजी इतना काफी रुपया दे दें, जिससे हमलोग अपने बचाव के लिए हरदम तैयार रहें, तो अलबत्ता लाश हटा दी जा सकती है।"

सेठजी—"लो भाई अभी लो, दस-बीस रुपये क्या चीज़ है ?"

सोहन—"वाह साहब वाह ! इतनी बड़ी जोखिम के लिये इतना थोड़ा रुपया ?"

प्रकाश—(ऊपर देखकर) "सेठजी जल्दी कीजिये, सबेरा होना ही चाहता है । फिर कोई आ गया तो आप जानिए।"

सेठ—"अच्छा अभी सौ रुपये ले जाओ, पीछे और ले जाना।"

किशोरी—"ताऊजी, तब तो आप ज़ाहिर हो जाइएगा, क्योंकि पुलिस हमलोगों के पीछे खुफिया लगा देगी। आपसे रुपये की सहायता की बात जान लेने पर....आप ही समझिए कि वह क्या ख्याल करेगी।" इतने में किसी तरफ़ से खाँसने की आवाज़ आयी। सोहन ने कहा—"कोई आ रहा है; सेठ जी जल्दी कीजिये। कम से कम दो हज़ार रुपये अभी दीजिए, नहीं तो अगर हमलोग खबर न भी देंगे, तो भी पुलिस को लाश का यहाँ रहना मालूम हो ही जायगा।" अन्त में बहुत 'ना' 'नू' करते और रोने-कलपने के बाद १५ सौ पर मामला

लय हुआ। सेठजी झट से घर में जाकर उतने के नोट ले आए। टार्च की रोशनी में जाँचकर सोहन ने पास में रख लिया और सेठजी को कहा—"आप अब भीतर जाइए, और जरा देर से दरवाजा खोलियेगा।" बिचारे हक्के-बक्के तिलौड़ीको बगल में दबा कर सेठजी अपने दरबे में बन्द हो पड़े। इधर, इन मसखरों ने लाश का स्वांग बनाया। अरथी में सजाकर 'राम नाम सत्य है' कहते हुए बाजारों में फिरने लगे। इतने में प्रातःकाल हो गया। सूर्य भगवान के दर्शन हुए। लोग सड़कों पर धुरखेलीका उपद्रव मचाने लगे। बहुत से मुर्दे के स्वांग में सम्मिलित होकर गंगाजी तक गये।

दोपहर के बाद धमधूसरमल को पता चला कि लाश नकली थी और वह बेतरह ठगे गये!!

—०—

[तीसरी विधि]

महीनों तक लोग उनकी सूरतको—भरपेट—तरसते रहे। बस, घड़ी भर दूकान पर अपनी अनुपम झलक दिखाते, और नहीं तो घोंसले में ही घुसे रहते। अगर रास्ते में कोई मन की पूछता तो टाल देते या कहते कि 'तबीयत खराब है।" फिर तुरत ही आगे लुढ़क पड़ते। देर तक किसी से बातें करने का उनका जी नहीं चाहता। सब—बाहरवालों से कन्नी कटाए रहते। परपञ्चायत में भी जाना-आना छोड़ दिया था। झुँझलाहट बढ़

गयी थी। घर के लोग परीशान थे कि उन्हें क्या होगा ? अलबत्ता छोटे-सब से छोटे धमधूसरमल जानते थे; क्या कारण है। उधर नवयुबकों में जो नटखट थे, अक्सर रास्तों में प्रणामादि की आड़ में बिचारे को छेड़ दिया करते। कोई कहता—"जय रामजी की ताऊजी !" दूसरा कहता 'राम राम, दादाजी !" इन मीठी चुटकियों से मन-ही-मन बिचारे तड़प जाते और, जिन ध्वनियों में सब को उतर देते-अथवा जिन प्रतिहिंसापूर्ण झेंप की हसरत भरी क्षणिक चितवनों से उन नटखटों की तरफ ताक कर नजर चुरा लेते, उसका वर्णन करना किसी अक्खड़ कवि का ही काम है।

दो महीने बाद जैसे उनकी तबीयत ठीक हो गई हो। अब ठीक-ठिकाने से लोगों से मिलने-जुलने लगे। मगर भीतर-ही-भीतर घातक-ताक में लगे रहते कि कैसे उन दुष्ट युवकों से बदला लें। अधिक गुस्सा सोहन पर था। वहीं सबका सरदार था। हरदम यही चिन्ता उनके कलेजे को कचोटती रहती थी कि डेढ़ हजार रुपये ठगे गये। बाप रे बाप डेढ़ हजार...रुपये !! तिस पर वह ऐसे काम में खर्च होंगे, जिनके वे प्रबल विरोधी थे ? अतएव सोते, जागते, खाते, पीते,—हरदम प्रतिहिंसा के कल्पना-जगत में बिचरण किया करते।

एक रात की बात है। क़रीब ११ बजे होंगे। सेठजी किसी दूर के महल्ले से लौट रहे थे। अकेले ही थे। जल्दी के मारे सदर

छोड़कर गली के रास्ते आ रहे थे। उसी लेन में सेवा-समिति का दफ्तर था। जैसे ही पास पहुँचे कि खिड़की से किसी की मधुर—औरतनुमा आवाज आई--"प्यारे! मुझे छोड़कर और कहीं मत जाओ। तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ।" साथ ही कोई बोला—"हट चुड़ैल, मैं तुझे तनिक भी प्यार नहीं करता।" सेठजी का यह आवाज़ पहचानी हुई-सी जान पड़ी। ख्याल ने चौंका दिया कि अरे, यह तो सोहन है। फिर क्या था? प्रतिहिंसा-की अग्नि धधक ही रही थी, और भी प्रज्वलित हो उठी। सोचा, "सेवासमिति के कमरे में इतनी रात को कौन स्त्री सोहन से इस तरह बातें कर रही है। जरूर कुछ दाल में काला है।" कुछ और सुनने की अभिलाषा से खिड़की के नीचे सांस रोककर खड़े हो गये, पर सिवा कुछ अस्पष्ट वार्तालाप के और कुछ न सुनाई पड़ा। तब, दरवाजे के पास आये। देखा कि लाप-रवाही से उसके दोनों पल्ले भिड़ाए हुए हैं, और कुण्डा में ताला-चाभी लटक रहे हैं। दरवाजा खोलने की हिम्मत तो नहीं हुई, पर धीरे से कुंडी चढ़ा, और ताला में चाभी लगाकर फुरती से लोगों को खबर देने चल पड़े। सोचते जाते "इतने दिनों के बाद, आज बदले का अवसर आया है। साले को खूब सजा दिल-वाऊँगा। ओह, कितना बड़ा ढोंगी और पापी है। बदमाश! सेवा-समिति में यह कुकर्म!!!" इस समय की इनकी फुरती देखने ही योग्य थी। जैसे सरकस का सिखलाया हुआ—छोटा

राजपुत्र दो पैर पर उछलता हुआ जा रहा हो। सबसे पहले सेवा-समिति के सभापति को जगा, नोन-मिर्च के साथ सारी बातें बताकर वहाँ चलने को तैयार किया। फिर चोकन्दर दास, लाला पापड़मल, गोबर गणेश चौधरी, बुकरातीलाल आदि ७-८ उस मुहल्ले के नामी-गिरामी लोगों, तथा नाकेसे जमादार और दो-तीन सिपाहियों को साथ लेकर सेवा-समिति के दफ्तर पर धावा बोल दिया। वहाँ पहुँचकर सभापति, इशारेसे सब को चुप रहनेका आदेश देकर दरवाजे के पास-पास गये ही थे कि भीतरी कमरे से किसी औरत की आवाज़ आई—"हे भगवान्! मेरी रक्षा करो।" साथ ही किसी ने ज़ोर से कहा—"चुप हरामजादी।" अब क्या था? जो थोड़ी-बहुत शंका लोगों को थी, दूर हो गई! सभापति ने धीरे से ताला खोला और फ़ुरती से किवाड़ों को हटा दिया। सब-के-सब भीतर हाल में जा पहुँचे। मगर सामने जो निगाह गई तो शर्मिन्दा और चकित हो रहे। सेठजी के काटो तो लहू नहीं। धम्म से धरती में लुढ़क गये। इन लोगों ने देखा कि सोहन बाएँ हाथ में किताब लिये खड़ा है, और उसके सामने एक लड़का घुटना टेके हुए है कुछ दूर पर और ४-५ नवयुवक कुर्सियों पर चुप बैठे हैं। उन लोगों ने चौंक कर क्रोध-भाव से इनके तरफ देखा। सोहन ने कहा—"इस तरह रिहर्सल में आप लोग एकाएक क्यों आए?" फिर सभापतिजी को देख कर प्रणाम किया। सभापति ने सोहन को शान्त

करते हुए लोगों से कहा—"भाइयों, सेठजी जैसे हैं, प्रगट ही हैं, मगर आज यह और भी ज़ाहिर हो पड़े।" सबने सेठजी की ऐसी मानसिक मरम्मत की कि उनकी नानी मर गई। घृणा, क्रोध, अपमान और उपेक्षा की घनघोर वर्षा होने लगी। एक झूठी बात के लिये सोते से जगा कर लाना, लोगों का खून खौल रहा था। मगर सभापतिजो की वजह से सभी चुप रहे। जमादार साहब उन्हें पकड़ कर थाने में बन्द करने की ही फिक्र करने लगे। सोहन ने कहा—"हाँ जमादार साहब! ये हज़रत समाज के ऐसे ही खतरनाक सनीचर देवता हैं, इनकी पूजा बड़े घर ले जाकर ही कीजिए। नहीं तो इसी तरह लोगों को सताते रहेंगे।" बिचारे धमसूरजी की जो दुर्दशा हो रही थी, उसकी पाठक खुद कल्पना करें! अन्त में उन्होंने हाथ जोड़ कर—और शायद सच्चे मन से प्रतिज्ञा की कि फिर कभी ऐसी गलती न करूँगा, और न किसी अच्छे काम का विरोध ही करूँगा।" और इस कुकर्म के प्रायश्चित्त-स्वरूप एक हजार सेवा-समिति को और पचीस रुपये पुलिस वालों को देने का वादा किया। फिर बड़े स्नेह से सोहन का हाथ पकड़ लिया।

बाबू मालिश !

शोख छोकड़ों की मनोरंजक मरम्मत। मीठी-मुस्कान पर सिनेमा-संसार की एक क्षणिक चमक। 'विश्ववन्धु', कलकत्ता, और 'तिर्हुत समाचार', मुजफ्फर, में प्रकाशित।

रोज शाम को कालेज स्कायर टहलने जाया करता हूँ। चाहे जितनी भी देर हो जाये, ड्यूटी में चूक नहीं होती। तालाब के चारों ओर ८,१० चक्कर लगाता हूँ—तेजी से। और फिर, पास की बेंच पर बैठकर शरीर से सुस्ताता हूँ, मगर मन को, कल्पनाओं की तरङ्गों में बेरहमी से बहा देता हूँ। उसके डूबने का डर नहीं रहता। डूबता है, तभी कुछ-न-कुछ ले आता है।

हाँ, तो आज भी चक्कर काटने पहुँचा। आधे ही चक्कर में मिल गये श्री शिवशङ्कर शर्मा। बस मैं पूरे चक्कर में पड़ गया।

बात यह है कि जबसे इस-सिनेमा-लाइन में आया हूँ सिफारिश चाहनेवाले उम्मीदवारों को टालते-टालते, तङ्ग आ गया हूं। बाहरवालों की चिट्ठियों का ऐसा जवाब देता हूँ कि किसी की हिम्मत दुबारा लिखने की नहीं होती। यहाँ वाले घर पर ही आकर दिमाग चाटने लगते हैं। जब बहुत हैरान हो गया, तो कमरे में यह लिखकर टाँग दिया—

"कोई महाशय सिनेमा में नौकरी दिलाने के बारे में बात न करें।"

फिर भी कोई जब बहुत ही पीछा करता, तो डायरेक्टर से मिला देता। अगर सिप्पा भिड़ गया तो उनका भाग्य, नहीं तो मेरा पिंड छूट जाता।

शिवशंकर जी भी 'बहुत पीछा करनेवालों' में से ही थे।

उन्हें मालूम था—मैं शाम को कहाँ जाया करता हूँ। बस, आज यहीं भिड़ गये।

मैंने भी सोचा, आज इन्हें खूब ही निराश कर दूँ। बस, चक्कर काटना बन्द कर दोनों एक बेंच पर बैठ गये। और मैं लगा उन्हें उलटा-गीता पाठ पाठ पढ़ाने। जिस 'महाभारत' में ये कूदना चाहते थे, मैं उन्हें तरह-तरह के "उपदेश" देकर अलग ही रहने को समझाने लगा! मगर वह काहे को सुनते! 'अर्जुन' की तरह सवाल-पर-सवाल करके मेरा नाक में दम करने लगे।

इसी बीच एक १२-१३ सालका ढीठ लड़का, साथ में ६-७ साल के छोकड़े को लिये, पास आकर बोला—

"बाबू मालिश'! मैंने कहा 'नहीं'। दोनों चले गये, और मैं अपने 'पारथ' को समझाने लगा। थोड़ी देर बाद फिर छोकड़े आ डटे। 'बाबू मालिश कराइयेगा ?"

गीता—रचना में डिस्टर्ब होते देख, मैंने जरा डाँटकर कहा—'नहीं रे नहीं, जबरदस्ती मालिश करेगा क्या ?'

छोटा बोला—'नहीं बाबू, हम लोग खूब बढ़िया मालिश करते हैं।' मेरे मित्र ने तनिक क्रोध से कहा—'जाओगे नहीं यहाँ से ?' दोनों फिर निराश होकर लौट भये। मैं जल्दी-जल्दी अध्याय पूरा करने लगा।

बहुत से उदाहरण देकर समझाया कि नए आदमियों को इस लाइन में घुसने के लिए कितनी कठिनाइयों का सामना

करना पड़ता है। एक तो कलकत्ता में हिन्दी-फिल्म-व्यापार यों ही ठण्ढा है। जो कुछ है भी, उसमें से भी, बराबर छँटाई होती रहती है। तिपर पक्षपात! फिर नए आदमियों की गुञ्जायश किस तरह हो? और—

मेरे 'सखा' बीच ही में बात काटकर कुछ कहना ही चाहते थे कि वे दोनों 'विघ्न' इधर-उधर चक्कर फिर आ धमके। न जाने वे दोनों मुझे पहचानते थे, या उन्हें सचमुच कुछ आमदनी न हुई थी। इस बार बड़ा छोकड़ा मुस्कुराता हुआ बोला—

'बड़े बाबू, सच कहता हूँ— ऐसी मालिश कर दूँ, कि आपकी तबीयत खुश हो जाय। जियादा नहीं सिर्फ एक आने की ही तो बात है। अगर पाँच मिनट में आपको नींद न आ जाय, तो एक कौड़ी मत दीजिएगा।'

जी में तो आया, एक-एक चाँटा रसीद कर दूँ, मगर कुछ सोचकर गुस्सा पी गया। शिवशंकर झपटे उसकी तरफ। मैंने रोक लिया। दोनों छोकड़े मुस्कुरा रहे थे। छोटा फिर बोला 'हुजूर' मालिश।'

बड़ा शरारती लहजे में कह उठा—'बाबू मालिश'

मैंने सोचा, बच्चे हैं तो क्या, इन्हें इन्हीं की तरह सजा देनी चाहिए। तब मैंने उनसे कहा—'कितने पैसे लोगे'? बड़ा छोकड़ा बोला 'सिर्फ एक आना हुजूर।'

मैंने कहा 'जिसे कहूं, उसकी मालिश करोगे?' दोनों बोल उठे—

'हाँ, सरकार।'

मैंने दो पैसे पाकेट से निकालकर बड़े को पेशगी देते हुए कहा—'अपने साथी की मालिश करो' इतना सुनते ही दोनों अकचकाए। तब मैंने पैसे वाला हाथ खैंच लिया और कहा—'मालिश की जरूरत नहीं है, अगर तुम्हें पैसे चाहिये तो जिसे मैं कहूँ, उसकी मालिश करो, नहीं तो जाओ। और फिर दुबारा आकर दिक् करोगे तो, इस बार पीटोगे।'

अब तो दोनों आपस में एक-दूसरे का लगे मुँह ताकने और हम मुस्कुराने।

बड़े ने देखा कि आया हुआ पैसा जा रहा है, तब वह छोटे को समझाने लगा। छोटे बेचारे की तो बोलती बन्द।

बहुत 'ना' 'नू' के बाद वह नीमराज़ी हुआ। तब बड़े ने उस पर हाथ फेरना शुरू कर दिया। एक-दो मिनट में ही छोटा घिघिया उठा।—आख़िर में रो पड़ा। बड़ा उसे समझाने की कोशिश करने लगा। आसपास के बहुत से लोग तमाशा देखने इकट्ठे हो गये और असलियत जानकर हँसने लगे। जब मैंने देखा की काफ़ी सज़ा हो गई तो मालिश रुकवा कर उनके पैसे दे दिये।

—०:※:०—

भोली भक्ति

वैसे तो यह है बच्चों की कहानी, पर शंकर पार्वती संवाद का रहस्य-प्रकाशक युवक-बूढ़ों को भी तत्वज्ञान के साथ मनोरंजन देता है। 'जागरण' काशी, और 'समाज-सेवक' कलकत्ता में प्रकाशित।

"डेको लगुनात, अमलागल कैछा बलिया उआअय"

"आउल मेलाबी"

"मेलाबी"

रघुनाथ—हाँ हाँ, छबका बरिया हुआ हय।"

"एँ एँ एँ, मेला तोल दिया।"

रघुनाथ—"नहीं, तोरे उछको कछम"

"एँ एँ एँ, अमला गल गिला दिया, ऊँ...ऊँ...ऊँ"

रघुनाथ—"देखो कमल, तुमने उमा का घर गिरा दिया कान पकरो....।"

❀ ❀ ❀ ❀

शरद् का शीतल प्रभात था। गुलाबी जाड़े की लोरियाँ अभी भी मादकता फैला रही थीं। बाल—रवि ने प्रकृति के हरियाले बासनों में परोसे हुए आकाशी मोतियों का नाश्ता करके, रेत की भीगी चादर में, अभी अभी मुँह पोंछना आरम्भ किया है। मोद-पुर गाँव में गल-बहियाँ डाले बहती हुई गन्डकी के एक कम चालू घाट पर थोड़े से स्नानार्थियों को शान्त कोलाहल जारी है। ५-७ छोटे-छोटे बाल-बालिकाओं की टोली, गीली रेती में पैरों के सहारे घर बनाने का खेल खेल रही है। सभी की उम्र ४ से ७ की होगी। सभी नंगे हैं। किसी-किसी के शरीर पर जाँघिया और कुरता है। एक रघुनाथ ही सबमें बड़ा और कुछ समझ-

दार है। कमल ने जब उमा का घर ढाह दिया, तब उसने उसे कैसा दण्ड दिया, यह आपको मालूम है।

❀ ❀ ❀ ❀

थोड़ी देर में, स्नानार्थी निवृत्त होकर, घाट के जागते देवता 'चुनेश्वर महादेव' के दरबार में हाजिर हो चुके हैं। बालूकी पालिस से चमकते हुए लोटों में गंडकी का जल भरे, भूतनाथ भगवान पर चढ़ाते, 'बम्-बम् महादेव' के नारे लगाते हुए भक्त लोग धीरे-धीरे घर लौटने लगे। उधर बाल-मण्डली में कनैठी लीला ने सारा गुड़-गोबर कर दिया। सबके घर बिगड़ गये। घाट को सूना देख, अन्त में इन लोगों ने भी जल्दी-जल्दी नहाना और जलक्रीड़ा में घर बिगड़नेवाले गम को छुपाना शुरू कर दिया। खूब ऊधम मचा लेने के बाद, चलते समय प्रस्ताव होने लगा।

रघुनाथ ने कहा "हम भी महादेवजी को जल चढ़ावेंगे।"

कमल – "अमबी चरावेंगे।"

उमा · "अमबी"

गायत्री—"ईयाँ छे ले कैसे जाओगे ?"

रघुनाथ—(कुछ सोचकर) "ईजुली में"

बस क्या था, सबों ने अँजुलियाँ भरनी शुरू कीं और भर-भर कर जैसे कुछ बढ़े कि वे मुफलिस हो चलीं। मन्दिर तक जल ले जाना मुश्किल हो गया। फिर परामर्श होने लगा।

गायत्री ने कहा "आज छोल दो, कल लोता लायेंगे" मगर

बहुमत की ज़ोरदार इच्छा हुई कि नहीं आज ज़रूर चढ़ाया जाय —चाहे जैसे भी हो।

विमल की सलाह हुई कि पत्तल का दोना बनाकर काम लिया जाय। पर व्यवहार में यह भी बेकार साबित हुआ। अन्त में बहुत तर्क-वितर्क के बाद यह निश्चय हुआ कि "खूब कुल्ला करके भीतर से मुँह खूब साफ करके, एक-एक पवित्र कुल्ला जल लेकर चला जाय और 'बाबा' पर चढ़ाया जाय।"

मन्दिर में सन्नाटा हो चला था। पुजारी महाराज रसोई-पानी में जा लगे थे। इसी समय भोले-भाले शम्भू के भोले-भाले भक्तों की अपूर्व जल-ढरी आरम्भ हो गई!

❀ ❀ ❀ ❀

पार्वती तमक उठीं। मुँह लटका लिया। उठकर जाने लगीं। बनावटी आश्चर्य से बाँहें पकड़ कर नटराज ने पूछा - "कहाँ चलीं।"

पार्वती—"बस छोड़ दीजिये, हटिये।"

भगवान—"आखिर हुआ क्या? कुछ कहो भी तो।"

पार्वती—"आप औघड़ हैं—पूरे अघोरी।"

शिव -"अरे यह तो सभी जानते हैं, कोई नयी बात नहीं है।"

पार्वती—"हाँ नयी, एकदम नयी बात है और साथ ही घृणित भी (मुँह बिचका कर) ओह, राम-राम।"

शंकर—(मुस्कुराकर) "साफ़ तो कहती नहीं, बेकार घृणा प्रकट कर रही हो।"

पार्वती—"आप तो जान-बूझकर, अनजान बने, विनोद कर रहे हैं। अभी-अभी आप पर कैसा पवित्र और सुस्वादु जल चढ़ाया गया है।"

महेश—(बैठाते हुए) "बस, इतनी सी बात! मालूम होता है, उस अप्राप्य देव-दुर्लभ-तरल राशि को अकेले ही डकार गया, इसी से तुम अप्रसन्न हो। अच्छा, कल रहा सब-का-सब तुम्हारे ही हिस्से में।"

पार्वती—(फिर उठने की चेष्टा करती हुई) "देखिये मुझे मतली आने लगेगी। राम राम! गन्दे बालकों के अपवित्र मुँह का दुर्गन्धयुक्त जल! छिः छिः!"

विश्वनाथ—"सच कहता हूँ देवि, जीवन में ऐसी भेंट कभी मयस्सर न हुई थी। गंगा से भी अधिक पवित्रता, अमृत से भी अधिक स्वाद, सोम रस से भी अधिक मादकता और मधु से भी बढ़-चढ़कर मिठास! ओहो हो, अभी तक जीभ चटपटा रही है।"

पार्वती—(चिढ़कर) "जाइये, इस बारे में आपसे कुछ कहूँगी ही नहीं। किन्तु कृपया अब से मेरे पात्रों को जूठा....।"

महादेव—"भूधर-भूपति की मानिनी कन्या, तुम व्यर्थ ही मान कर रही हो। आश्चर्य है कि तुमने उन भोले शिशुओं का भाव नहीं परखा।"

पार्वती—"क्षमा कीजिये, जब धर्म और आचार पर घृणित आघात हो, तो केवल कोरा 'भाव' देखकर क्या होगा ? राम राम ! कहाँ वह स्नान से पवित्र, विशुद्ध वस्त्र पहिने भक्तों को धोये-माँजे पात्रों का पवित्र जल और कहाँ मुँह के थूक-खखार और लार का मिश्रित—एकदम अशुद्ध पानी ?"

शम्भू—'मालूम होता है तत्वहीन रूढ़ीवादी-धार्मिक संस्कार का सनीचर तुम्हारे सर भी चढ़ बैठा है। अच्छा बताओ, संसार हमारी उपासना किस प्रकार करता है ?'

पार्वती—"आपकी मूर्ति का ध्यान या पूजा करके"

बमभोला—(हँसकर) "मेरी मूर्ति कहाँ है ?"

पार्वती—"वही जो शिवालयों में प्रतिष्ठित है।'

महेश—(जोर से हँसकर) "आज तुम्हें क्या हो गया है प्रिये ! क्या वही मेरी मूर्ति है—प्रतिमा है ?"

पार्वती—"संसार तो यही समझ कर पूजता है।'

कैलाशपति—"किन्तु, तुम भी कह सकती हो कि वह मेरी ही मूर्ति है ? उसके न हाथ-पैर हैं, न मुँह है और न अंग-अवयव ही हैं, केवल एक गोल और लम्बा शिला-खण्ड मात्र है। उसमें और मुझमें समानता कैसी ?"

पार्वती—मूर्ति न हो, समानता भी न हो, किन्तु संसार तो उसी को आपका सूक्ष्म-मानचित्र मानकर उपासना करता है।"

अखिलेश—अब आयीं राह पर। उसी सूक्ष्म मानचित्र में

'भाव' का रहस्य छिपा हुआ है। मेरी यथार्थ मूर्ति कल्पना के परे है, क्योंकि न तो उसे किसी ने देखा है और न देख ही सकता है। इसीलिये लोग अपनी भावना कल्पना के अनुसार मेरी अलख-अगोचर मूर्ति को एक केन्द्र-बिन्दु में अवस्थित मानकर मेरी उपासना करते हैं। जिस तरह गंगा की पवित्रता उसकी एक बून्द में परखी जा सकती है, सूर्य की महत्ता एक छोटे छिद्र द्वारा आयी हुई उसकी रश्मियों से मापी जा सकती है, उसी प्रकार शिवालयों में प्रतिष्ठित पत्थर के उन छोटे शिला-खण्डों से सारे विश्वब्रह्माण्ड के इस अविनाशी अधिपति का अन्दाजा लगाया जा सकता है। फिर जब सारा जगत भाव की पूजा करता है, तब मैं पूजापति होकर सच्चे भाव की गंगा में पवित्र की हुई वस्तु की श्रेष्ठता क्यों न अनुभव करूँ ?"

पार्वती—(कुछ ठहर कर)—"आपसे तर्क में कौन जीत सकता है ? परन्तु उन अबोध और मध्यम-संस्कारी शिशुओं के भाव का क्या ठिकाना, कौतूहलवश बड़ों की देखा-देखी किये गये कार्यों में भाव की सूक्ष्मता की कसौटी क्या ?"

हर—"हाँ, इसका निर्णय परीक्षा द्वारा किया जा सकता है। अच्छा, कल प्रातःकाल उसी समय तैयार रहना।"

× × ×

दूसरे दिन भक्त-मण्डली ठीक समय पर स्नान-आदि से निवृत्त हो बाबा के मन्दिर में इकट्ठी हो कर भजन पूजन में तल्लीन है। एकाएक

बड़े जोरों से मन्दिर गर्ज उठा। मालूम हुआ अभी ढह पड़ेगा, मानो वज्र गिरा हो।

भक्तों की सारी भक्ति बिखर गई। सबके सब भाग खड़े हुए। किसी ने लोटा छोड़ा, किसी ने धोती। किसी ने निर्माल्य छितरा दिया। पुजारी महाराज भी कहीं जा दुबके।

विश्वेश्वर ने पार्वती से कहा—"देखा, अपने विशुद्ध-वाहन पवित्र भक्तों की अपूर्व भक्ति? अगर मैं और जोर से गर्जता तो सबके सब यहीं खत्म थे।" पार्वती ने कहा "अच्छा, अब आपके प्यारों की भक्ति देखूँगी!"

बालकों की जल-क्रीड़ा अन्तिम साँस तोड़ चुकी थी। अब जलढरी की तैयारी थी। छोटे-छोटे कोमल मुख-पात्रों में जल भरकर भोले-भाले भक्त, अपने इष्टदेव के दरबार में इकट्ठे हुए ही कि मन्दिर में पहिले से भी दूना गर्जन हो उठा। रघुनाथ ने घबरा कर कहा—"मन्दिर गिर रहा है, हमारे शिवजी पिचा जायेंगे।" बस क्या था, सबके साथ शिवलिंग पर इस तरह छा गये, जैसे मन्दिर को अपने ऊपर रोककर, भगवान को बचा रहे हों।

* * * *

नटनागर मुस्करा रहे थे और पार्वती की आँखों में वही गंडकी का जल चमक रहा था!

—:※:—

कहानी

नापाकिस्तान

'संसार' के होली-विशेषांक (१९४५) में जब यह रचना प्रकाशित हुई, लेखक के पास कई प्रशंसात्मक पत्र आए। बम्बई के एक गुजराती साप्ताहिक, दिल्ली के उर्दू ...... सिने साप्ताहिक और मुजफ्फरपुर के 'तिरहुत समाचार' ने भी इसे प्रकाशित किया। इसमें जो कुछ है, दिल-ओ-दिमाग के लिये बहुत कुछ है। इस संग्रह का अंतिम अंश असामयिकता के कारण हटा दिया गया है।

जो आँखों देखा, कानों सुना, मगर समझ नहीं सका। वही लिखने चला हूँ। झूठ सच की तो भगवान जानें, लेकिन इतना दावे से कह सकता हूँ कि मेरी नीयत साफ है।

न जाने दोस्तों को क्या दुश्मनी है कि जब कभी गोट-वोट होती है, गहरी - एक दम गहरी — छना देते हैं। शायद इसलिए कि मैं अपने होशो-हवास को उनकी बेहोशियों पर हिरन कर दूँ। यानी पर को कतर कर अथवा बे पर की उड़ाकर उनका, जिस तरह हो, मनोरंजन करूँ।

उस दिन भी बागीचे में घुटी और खूब ही घुटी। यही ५-७ आपस ही के गिने-चुने हमजोलियों का प्रायवेट जमावड़ा था। यारों ने कहा—'आज तुम्हारे ही हाथों की करामात देखेंगे।' सो, कुछ न पूछिये। बक़ौल खुद 'पत्ती थी कड़ी और गजब हाथ थे उनके, 'जालिम ने चकाचक को हलाहल बना दिया' वाली कहावत चरितार्थ हुई। पुरानी जहरी पत्ती, गंडकी का निर्मल जल, साफ-छिले हुए बादाम-पिस्ते, चुनी हुई ठंढई, केशर, ताजा-ताजा गइया का दूध। ओह, दिव्य सोमरस! सिल-लोढ़े ने भी जैसे अपने कलेजे खोल दिये। तिसपर सधे हुए हस्त-कौशल के तांडव-नृत्य का क्या कहना!

हाँ तो जनाब, दो-दो दोस्तों ने लिये और मेरे सर पड़े ४ चुक्कड़। तिसपर जालिमों ने मेहनताने में अपनी तरफ से २ की चपत और जड़ दी। पापी पेट फटा तो नहीं, लेकिन स्नान

वग़ैरह से छुट्टी पाते ही जादू सर चढ़ बैठा। विशुद्ध नशा के बदले दिमाग़ में चक्कर आने लगे। तबीयत बदमजा हो गयी। रंग बदरंग हो चला। मित्रों की मजलिस की मजेदारी मारी गई। निश्चित कार्यक्रम रद्द हो गया। पेड़ के नीचे खाट पर जा लेटा। क्षण में ही सरूर का गरूर सातवें आसमान कुछ ऐसा चढ़ा कि मैं अप-कड़-कल्पनाओं की घुड़दौड़ में बेतहाशा बाजियाँ लगाने लगा।

एक अनोखी योजना सूझ गई। सोचा इन दिनों हर तरफ 'इस्तानों' की धूम है। कोई 'पाकिस्तान', कोई 'हिन्दू-इस्तान', कोई 'पाठानिस्तान', कोई 'द्राविड़िस्तान', कोई 'आर्यिस्तान', तो कोई 'अमुकिस्तान' बना रहा है। ध्यान में आया यह सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं—एक ही 'इस्तान' के पर्यायवाची। निर्बलों पर सदैव के लिए अधिकार रखने की, बलवानों की साज़िश है। संसार में सारे अनर्थ की जड़ यही है। इसे दूर किए बग़ैर सच्ची शान्ति नहीं स्थापित की जा सकती। तरंग में तड़ित वेग से चट उपाय भी सूझ गया।

संसार में जितने दुखी, असहाय, पीड़ित और कमजोर जीव हैं—चाहे वे दो पाये हों या चौपाये सबों का संगठन करने के लिए, एक अलग 'इस्तान' 'नापाकिस्तान' के नाम से कायम हो जो बलवानों के 'पाकिस्तान' से एकदम दूर रहे।

सोचते देर न लगी कि दुर्लभ सोमरस की कृपा से क्षण भर में ही वह विराट् बस्ती बस गई और मैं वहाँ का राष्ट्रपति चुन

लिया गया। मेरे स्वागत की ऐसी अभूतपूर्व तैयारियाँ हुईं कि दुश्मनों के दिल पर साँप लोटने लगा। वे बाधा डालने की गुप्त कोशिश करने लगे। नियत समय पर जैसे ही मैं प्रवेश-द्वार पर पहुँचा कि फाटक की दोनों तरफ़ से पम्पों द्वारा खौलता हुआ तेल मेरे पैरों पर डाला जाने लगा। पाँव जल उठे। फिर आँखों का जो पट खुला तो अपना सारा मायाजाल समेट कर कलमुँही कल्पना भाग खड़ी हुई। होश सँभाल कर देखा कि दोनों तरफ़ से चतुर्वर्षीय भौंचन्द और पंचवर्षीय मिरज़ा, पैंट खोलकर अपनी प्राकृतिक पिचकारियों की गर्मागर्म बौछार मेरे दोनों पैरों पर चला रहे हैं। जी में आया इस गुस्ताखी पर चट चट एक एक चाँटें रसीद कर दूँ। मगर दुष्टों ने मौक़ा ही नहीं दिया। एक बोला—'ऐसा अन्टाग़फील सोते हैं आप? पचती नहीं तो इतनी चढ़ा क्यों लेते हैं?' दूसरे ने मेरी बोलती के कान उमेठे—"उफ़ कितनी देर से जगाने-जगाते, इस नायाब उपाय से आपकी नींद खोल सके हैं हम। ख़ैर! चलिए, चलिए। देर न कीजिए; समय निकला जा रहा है।"

मैंने गुस्सा पीते हुए कहा—'कहाँ चलने को कहता है रे पाजियो।' भौंचन्द मुँह बनाता हुआ बोल उठा—'जिन्दगी भर खुफीयागीरी कीजिएगा, मगर ऐसा अवसर कभी न मिलेगा।' न जाने क्रोध के बदले क्यों उनकी बातों पर विश्वास होने लगा।

हमलोग बाहर आए। दरवाजे पर देखा, दो गदह-बछेड़ों

के साथ एक तगड़ा गधा कनौतिया चढ़ाये खड़ा है। मुझे ल्रूपर बैटाकर मेरे दोनों तालबैताल दोनों बछेड़ों पर जा बैठे। मिरजा ने कहा—'जोर से दोनों कान पकड़े रहिएगा..... हाँ, हाँ, हाँ, अरे अपने नहीं, गधे के कान पकड़िये।' और सचमुच लम्ब-कर्णजी के कान पकड़ते ही, ऐसा मालूम हुआ—मानो मैंने कोई कल दबा दी। ओह, तीनों सवारी हवा में उड़ चली। ख्याल आया, ऐसा तेज चलनेवाला विमान अब तक नहीं बना होगा। क्योंकि कसम सिल-लोढ़े की, बात की बात में, हमलोग नियत स्थान पर जा लगे।

अब मेरी निगाह और मेरे कान, जैसे ही उस दृश्य और आकाशभेदी कोलाहल पर अटके, तो क्या पूछते हैं आप, कि बस, मत पूछिए! दद्दा रे दद्दा, मेरी तो सिट्टी-पिट्टी गुम! उफ्फोफ, ऐसा न देखा, न सुना।

एक बहुत बड़े मीलों लम्बे-चौड़े मैदान में, हजारों गधे-गधियों का विराट-महासम्मेलन जुटा हुआ है। हेंकों-हेंको, ढाँव ऑव खुर-खर, और सट-पट की आवाजों से वायुमंडल में एक विचित्र निनाद फैला हुआ है।

बीच में रास्ता बना हुआ था। उसके दोनों ओर युवक-युवती गधे-गधियाँ कतार में—एक साथ कान ऊपर उठाए हुए—खड़े थे। हमलोग छहो जीव, शान से बीच में पहुँचे। वहाँ काफी जगह छुटी हुई थी, जिसमें ताजे-ताजे धोए-सुखाए बिना

इस्तिरी किए हुए रेशमी और रंगीन कपड़ों के छोटे-छोटे ढेरों पर आठ-दस रोबीले गधे, कुछ अलबेले ढंग अकड़े बैठे हैं। भौंचन्द से मालूम हुआ कि ये गधों के नेता हैं—लम्बकर्णजी, बंठा राम, हैंकोरानी, लम्बलिंगजी, सटहू, ठिठरा वग़ैरह।

मिरजा ने कहा—'अब कार्यवाही आरम्भ होगी। आप अपनी सवारीवाले गधे की दुम थाम्हें रहिए, सारी बातें समझ में आ जायेंगी। और सबसे पहले स्वागत-कविता आपको ही पढ़नी चाहिये। कहना नहीं होगा कि मैंने ऐसा ही किया। निम्नलिखित स्वागत-कविता पढ़ी—

'गदहे राम बहुत मजबूत,
धोबी के मेहनती सपूत।
लादी लादी जाती इन पर,
ऊपर मालिक बैठे तनकर॥
भारी बोझ ;लादकर चलते,
कभी नहीं हैं तनिक मचलते।
तौभी मार बहुत खाते हैं,
डंडा खा-खा दुःख पाते हैं॥
सब कुछ धीरज से सहते हैं,
मनकी मन में ही कहते हैं।

बाहर से चर-चुर कर आते,
टाँगों में फंदा लगवाते ॥
बस बोली है बहुत करारी,
चिल्लाहट है इनकी भारी।
हरदम हेंको हेंको कहते,
रोते हैं या हँसते रहते ॥

इस पर जो कुहराम मचा है कि बाप रे बाप, कान के पर्दे फटने लगे। मैंने दोनों कानों में उँगली डाल ली। कह नहीं सकता कि युद्ध में हजारों बमों के फटने से भी ऐसा वज्रघोष होता होगा या नहीं। शीघ्र ही लँगड़ी धोबिन का लगड़ा गधा ढिढ़मदरा उठा और अपनी रेंक-बोल में न जाने क्या ललकार उठा कि कोलाहल शान्त हुआ। पता चला, आप स्वागत-मंत्री हैं।

इसके बाद, बंठारामजी स्वागत-भाषण को उठे।

हमलोग जगदम्बा के वाहन हैं। महाप्रतापी राज-राजेश्वर लंकेश महाराज श्री रावण जी के दसो सर में - सबसे ऊपरवाला सर हमारा ही था। एक बार नारद जी को भी हमारा मुख धारण करना पड़ा था। हमारा महत्त्व बहुत बड़ा है। हम वस्त्र-विशुद्ध-वाहन हैं। कहीं हमसे खेती कराई जाती है, कहीं सवारी ली जाती है, कहीं बोझे ढोआये जाते हैं। और हमारा दावा है कि बोझे ढोने में हमारी बराबरी कोई जीव नहीं कर सकता। (इस पर तमाम गधे कान फटफटा उठे) हमारी और घोड़े की

नस्ल की असल में एक ही है, मगर स्वार्थी मानव-सभ्यता ने दो कर दी। और फिर दोनों के संयोग से चच्चर पैदा कराकर, मानव-रूपी पशु हमसे अन्य काम लेते हैं। हमारी गधी का दूध मुर्दों में भी जान डालने की शक्ति रखता है। हमारा विराट् कोक-शास्त्र संसार में अपना सानी नहीं रखता' इस पर जो कर्णफोड़ कोरस शुरू हुआ कि मालूम पड़ा आज आसमान की कुशल नहीं। कोई गदहियाँ इधर से उधर भागने लगीं, जिनके पीछे कई लफंगे युवक गधे अपने विराट-पोज में दिखाई दिये। 'बंठा' ने दुलत्तियों के शिष्टाचार से उनके होश ठिकाने किये तब शान्ति हुई। स्वागताध्यक्ष ने फिर कहा कि 'हम ऐसे उपयोगी जीव हैं कि हमारी लीद तक लोग बेकार नहीं जाने देते।' अन्त में आपने सबों का स्वागत किया, त्रुटियों के लिए क्षमा माँगी और सभा-नेत्री से आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की।

तदन्तर तुमुल हेंको घोष और कर्ण फटफटाहट के बीच श्रीमती हेंकी रानी ने खद्दर के श्वेत—सुसज्जित गद्दर पर आसन जमाकर, अपना भाषण आरंभ किया।

''आज संसार में भीषण क्रान्ति की लहर फैली हुई है। हर देश में, हर वर्ग में, हर जीव में परिवर्तन के भाव जाग उठे हैं। सदियों के सताए और दबाए हुए, आज अपने उत्थान का अनुकूल अवसर समझ कर चेत रहे हैं। परन्तु अत्यन्त खेद की बात है कि हम अभी तक नीचे ही गिरे हुए हैं—हम पर अनेक

अत्याचार हो रहे हैं। हमारी सहनशीलता ही हमारी गुलामी की बेड़ी बन गई है। हमारा बोझा उठाने का गुण, हमें और भी बोझ ढोने को मजबूर कर रहा है। अपने अमोघ अस्त्र 'दुलत्ती' को हम आज आपस में ही प्रयोग कर रहे हैं। 'दाँत काटी' शस्त्र को आज हम एक दूसरे के विरुद्ध काम में ला रहे हैं। लाखों करोड़ों मनुष्य-रूपी-गधों के गन्दे वस्त्रों का भारी-से-भारी बोझ हमी लादते हैं। हमारे मालिक को इतने से ही सन्तोष नहीं होता। नवाब का नाती बनकर बोझ-पर-बोझ होकर, वह भी लद बैठता है। खाने को पूरा नहीं देता। इधर-उधर चरने को भी छोड़ देता है तो अगले पैरों में फन्दा डाल देता है। हमारी गधी को बच्चा हुआ तो बेरहम को क्या, एक दिन भी सौरिगृह में दम नहीं लेने देता। दूसरे ही दिन काम में लगा देता है। हम पर मुँगरी की भीषण मार पड़ती है। इसलिए भाइयों और भौजाइयों! हमारी जोरदार राय है कि हम लोग संगठित होकर अपनी बस्ती अलग बसावें। अपने को पवित्र कहने वाले मानव की नगरी से हम अपवित्रों की नगरी दूर—एक दम दूर रहे। हाँ, कोई दूसरा किसी तरह का भी जीव जो हमारी ही तरह दलित-दुखी हो, मेल से रहना चाहे तो खुशी से हमारे 'नापाकिस्तान' में रह सकता है। और हम यह भी कह देना चाहते हैं कि अब हम अपने अस्त्र-शस्त्रों को अपनी रक्षा के लिए ही सुरक्षित रखें।

अन्त में, मैं मनुष्यों को चेतावनी देती हूँ कि वे आपस में गधा कहने की आदत से बाज़ आवें। इससे हमारे समाज का अपमान होता है।"

गर्दभ-नेताओं के आशीर्वचनों के बाद, सभी गधे-गधियों ने दुम उठाकर और कान खड़े कर सभापति के प्रस्तावों को स्वीकार किया।

चतुर-चतुरानन

चाचाजी खुद अपना परिचय हैं। वे १९४० में कलकत्ता आए और रहे - बहुत कुछ देखा सुना। उनकी बहुत थोड़ी सी अनोखी बातें इस कहानी में दी जा रही है। शेष के लिए उनसे 'सेंसर' कराना है। वे इस समय कहाँ हैं। किस धुन में हैं, पता नहीं। राजकुमार दरवान भी कहीं गायब है। इसलिये पाठकगण चतुराननजी के सम्बन्ध में इतनी ही भेंट स्वीकार कर, संतोष करें। साप्ताहिक 'विश्वमित्र' में इसके अनेक „अंश प्रकाशित हो चुके हैं।

सर चफाचट, बाँयीं आँख जरा ऊपर उठी हुई और दाहिनी नीचे झुकी हुई—आकाश-पाताल दोनों की खबर रखने-वाली। चपटी नाक,—चेहरे पर पेबन्द की तरह चिपकी हुई। बङ्गसागर और हिन्दमहासागर की तरह दोनों चिगटे गाल और नीचे लटकी हुई ठुड्डी ने कुमारी अन्तरीप का नक्शा लालाजी के चेहरे में नुमायाँ कर रखा है। माँ को मरे इतने दिन हो गये कि इन्हें याद भी नहीं, लेकिन 'माता' के प्यार की सहस्रों अमिट छाप सुघड़ सूरत पर छविमान हैं। साथ ही दर्जनों टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें मानचित्र की नदी-रेखाओं की तरह अतीत की याद दिला रही हैं। ऊँटनुमा लम्बी गर्दन, एक ओर का कंधा तनिक-सा झुका हुआ। बदन में मटमैले रंग की मोटी खादी की चौबन्दी, जिस पर जगह-ब-जगह मैल की तह जमी हुई, कमर में काले रंग की जाँघिया, पैर में कानपुरी चमरोंधा,—बायाँ पैर बड़ा दायाँ छोटा। चलते समय कमर कज खाती हुई। पीठ पर बड़ी-गठरी, जिसके दोनों छोर कंधों के नीचे से निकलकर गर्दनपर गठबन्धन किए हुए। दायें कंधे में लटकता हुआ बटुआनुमा-झोला। बायें हाथ में छोटी-सी झोली। दाहिने हाथ में भंगघोटना। बस, यह हुलिया है हमारे चाचाजी की।

जिस समय आप पटना जङ्क्शन के बाहरी अहाते, धरातल पर विषम समकोण बनाते हुए, धड़ल्ले से आ धमके, उस समय आधी रात आखरी साँस तोड़ चुकी थी। चाचाजी ने सोचा

कि, टिकट लेना तो महापाप है और किसी-न-किसी तरह कल-कत्ता पहुँचना महापुण्य। इसलिये थर्ड-क्लास के गेट की आशा छोड़, ऊँचे क्लास के गेट के पास चहलकदमी करने लगे। अध-गोरा गेटकीपर अपनी यूनिफार्म में तिपाई पर सजग बैठा था। मगर उससे भी सजग निद्रादेवी अपनी झपकी डालकर बेचारे को बीच-बीच में हिला-डुला देती थीं। चाचाजी इसी मौके की ताक में थे। आहिस्ते से उसके पीछे खड़े हो गये। इस बार जैसे ही झपकी ने अपना वार किया कि चतुरानन चाचा झट से भीतर हो रहे और फुर्ती से प्लेटफार्म पर पसर गये उसी तरह कील काँटे से सजे-बजे। औंघाये हुए कान्स्टेबल ने टोका—'अभी पंजाब मेल आयेगा; पसेंजर गाड़ी लेट है। उधर जाकर बैठो।' लालाजी ने रूपक बाँधते हुए कहा—'तुम्हारे कहने से उधर जायें? पंजाब मेल में ही तो जाना है।"

कान्स्टेबल—'टिकट किस क्लास का है?'

चाचाजी—'जिस क्लास का होगा, आप ही चढ़ जाऊँगा। तुम्हारी मदद नहीं चाहिये।'

इतने ही में मेल धड़-धड़ाती हुई आ लगी—खचाखच भरी हुई। उतरनेवाले कम, चढ़नेवाले अधिक। भारी रेलम-पेल मची। इण्टरक्लासी चाचाजी इण्टरक्लास के एक डब्बे की ओर लपके। वहाँ प्लेटफार्म पर पहले ही से एक मोटे थुल-थुल अध-बयस सेठजी अपनी नयी बीवी के साथ, असबाबों की किले-

बन्दी में डटे हुए थे। दो नोकर, तीन कुली, एक दरवान यही सैनिक टुकड़ी थी। सेठजी ने शायद पहले ही से चढ़ाई का उपाय कर रखा था। गाड़ी के प्लेटफार्म छूते ही स्टेशन का एक कर्मचारी झट से उस डब्बे के पास आ धमका और उतरनेवाले के सिवा चढ़नेवाले की रोक कर दी। घबराये हुए मायूस मुसाफिर सेठ और कर्मचारी को आशीर्वाद देते हुए जिधर सींग समाये उधर घुसने की चेष्टा करने लगे। मैदान साफ देख कर सेठ और कर्मचारी की मुस्कुराहटें टकराईं, और फिर सामान डब्बे के भीतर रखने की तैयारी विद्युतगति से होने लगी। उससे भी तीव्रगति से ध्यान लगाए हुए हमारे हीरो चतुरानन चाचा लपक कर डब्बे के भीतर हो रहे और जब तक भीतरवाले मुसाफिर—'हाँ, हां अरे क्या करते हो, जगह नहीं है, दूसरे डब्बे में जाओ, पूरी तरह कहने भी न पाये कि चाचाजी अपने असबाब उतार इतमिनान से बैठकर सुसताने और क्रुद्ध आँखों से देखने लगे। मोर्चेबन्दी भङ्ग होते देख कर सेठजी ने कर्मचारी की ओर देखा, कर्मचारी ने क्रुद्ध मुद्रा से जरा रोब के साथ चाचाजी से पूछा—'टिकट है ?'

चाचाजी—'है, बाबा है ! तुम सेठजी का सामान तो भीतर चढ़ाओ, नहीं तो बेचारे की गाड़ी छूट जायगी।'

कर्म०—'हाँ सेठजी, सामान चढ़वाइये, जल्दी। (चाचा से) अच्छा, दिखाओ टिकट।'

चाचा—'तुम कौन होते जी टिकट देखनेवाले ? बुलाओ टिकटचेकर को। अरे हाँ, देखिये तो सही।'

कर्म०—'तुम नहीं दिखाओगे टिकट ?'

चाचा—'कह तो दिया कि टिकट चेकर को बुलाओ, तुम्हारा क्या विश्वास ? टिकट दिखलाऊँ और तुम लेकर चलते बनो ?'

कर्मचारी—'मालूम होता है—तुम्हारे पास टिकट नहीं है। उतरो नीचे।'—इतना कहकर उसने ज्यों ही चाचा जी का हाथ पकड़ नीचे उतारना चाहा कि चाचा जी ने कसकर एक झन्नाटी हाथ कर्मचारी को लगाया और लगे खुद जोरों से रो-रो कर आसमान सर पर चढ़ाने।—'बापरे, बाप, मार डाला रे बाप, खून-खून', अब तो बेचारे कर्मचारी की सिट्टी पिट्टी गुम। चाचाजी की चिल्लाहट उसी तरह जारी रही। ऊपर नीचे बेंचों पर सोये हुए मुसाफिर जग पड़े और लालाजी से हमदर्दी दिखाते हुए कर्मचारी की लानतमलामत करने लगे। तब तक सेठजी असबाब के साथ लद चुके थे। गाड़ी की तीसरी सीटी भी बज चुकी थी। हक्का-बक्का कर्मचारी ज्यों ही उतरा गाड़ी चल पड़ी। चाचाजी की रुलाई मुस्कराहट में बदल गई।

रात भर कोई विशेष बात न हुई। सिवा इसके कि चाचाजी के नासिका-यन्त्र की 'घर्र घर्र घों हपू' की विचित्र आवाज से यात्रियों की नींद, बीच-बीच में करवट बदलती रही।

५ घण्टे तक बेखबर सोने के बाद चाचाजी खबरदार होकर

उठ बैठे ! देखा, अन्य यात्री अभी सो ही रहे हैं। अँधेरा अच्छी तरह दूर नहीं हुआ था। चाचाजी ने सोचा कि प्रातःकाल का अपना शुभदर्शन इन्हें देना ठीक नहीं, इसलिये सबकी ओर पीठ फेर कर बैठ गये, और प्रभाती रेंकने लगे। गाड़ी के 'खटर खटर-खट' के बेतालताल के साथ बिगड़ी हुई रेडियो-आवाज की तरह चाचाजी की कर्णभेदी सानुनासिक स्वरलहरी एक अजीब समाँ उपस्थित करने लगी। लोग हड़बड़ा कर उठ बैठे, और एक दूसरे को देखने लगे। असबाब और पेंच पर आधेआध सिमटी हुई नई-नवेली दुल्हिनजी घूँघट में सगबगाईं। सेठजी भी 'राम-राम जै सीताराम' कहकर जँभाई लेते--चुटकी बजाते बेंच पर सीधे हो पड़े। मगर, हमारे सुगायक चाचाजी अलापे जा रहे थे—'मनुआ जागो भया सबेरा। माया का यह तेरा मेरा छोड़ो झूठा डेरा। कूच करन की बेरा। मनुआ जागो ......' गाड़ी मधुपुर छोड़कर आसनसोल दौड़ी जा रही थी। कुछ को यहीं उतरना था। वे सामान वगैरह ठीक करने लगे। बक़ियों ने टट्टी फ़राग़त से निबटने का विचार किया। मगर सभी हैरान थे कि यह कैसा गानेवाला है—जो मुँह फेरकर गा रहा है। यारों ने रुख पलटवाने के लिये बोल छोड़ना शुरू किया। 'वाहवा, क्या कहने हैं, कमाल है, क्या कहने हैं।' मगर चाचाजी का साधनाक्रम ज्यों-का त्यों-रहा। एक बाराबंकी के मौलवी साहब जो कलकत्ता में किसी मुसलमान मिनिस्टर के लड़कों के उर्दू ट्यूटर और कारिंदा

थे, घर से लौट रहे थे। ऊपरवाली बेंच से नीचे उतर आये और जरा मजाक के लहजे में बोले- "अजी हजरत! इस बेजान लकड़ी की दीवार की तरफ तो आप अमृत टपका रहे हैं, और हम लोगों ने क्या ख़ता की जो मुँह फेरे हुए हैं। जरा अपने रुखे रौशन का पेंच इधर भी घुमाइये।" चाचाजी की संगीत-समाधि भंग हो चुकी थी, उन्होंने ज्योंही पट-परिवर्तन किया कि आश्चर्यजनक अस्फुट ध्वनि सबके मुँह से अनायास निकल गई। मौलवी साहब के मुँह से बेतहाशा निकल पड़ा—"सुभान अल्लाह, क्या क़यामत का हुस्न पाया है— तूने जालिम। जिस वक्त अपनी कारीगरी का ख़जाना खोखला करके ख़ुदा ने पहले-पहल तुझे गढ़ा होगा, क़सम जब्राईल की, फ़रिश्तों को ग़श आ गया होगा।" ठहाकों से डब्बा गूँज उठा। चाचाजी कब चूकनेवाले? फौरन ही तौलकर जवाब दिया—"जी हाँ, और जिस समय आप खराद पर चढ़ाये जा रहे थे, ख़ुदा के कारखाने में मनहूसियत मसिया पढ़ रही थी।" मौलवी साहब हाजिर-जवाबी की दाद देने से न चूके, फौरन ही उठकर बाइज्जत चाचाजी को अपने पास बेंच पर बैठा लिया और अपने व्यंग पर शर्माते हुए माफ़ी माँगने लगे। चाचाजी ने कहा—"इसमें माफी क्या जरूरत? भगवान ने मुझे बनाया ही ऐसा है कि जो देखता है—हँसता है। मुझे संतोष होता है कि कम से कम इस सूरत को देखकर लोगों का दिल तो बहल जाता है।'—इस बात पर मौलवी साहब और पानी-पानी

हो गये। औरों के मन में भी सहानुभूति जगी। तब तक आस-नसोल आ गया था। उतरनेवाले उतर गये, तीन सूट-बूटधारी बंगाली सामान सहित चढ़े। चाचाजी को देखते ही एक ने कहा—'ओ माई गाड, वन्डर, वन्डर! दूसरा बोला—'हैंच बैक आव नाटर्डम।' तीसरे ने जरा नाक सिकोड़ कर कहा—'बट सेकेन्ट एडीशन।' चाचाजी ने उन्हें घूरते हुए—मुस्करा कर कहा—"एडी-शन तो एक ही है, कापियाँ तीन हैं—क्यों मौलवी साहब?" उनमें से एक जरा तैश में बोला—'केया कहा तुम?' चाचाजी ने नरमी से—मुस्कुराते हुए जवाब दिया—"मैंने कहा कि इस वेश-भूषा और जिस भाषा में आप तीनों ने अभी बातें कीं, उनसे आपका कोई संस्करणीय सम्बन्ध है?" एक ने झुँझलाकर कहा—"हम कुछ नहीं जानता, बास चुप करो।" इतने में सेठजी को पानी की जरूरत हुई। लगे चिल्लाने 'पानी पांड़े, पानी पांड़े' चाचाजी फौरन ही झोले से गगरीनुमा लोटा निकालकर नीचे कूदे। और दो मिनट में पानी लाकर सेठजी के लोटे और गिलास में भर दिया, और भी जिन्हें जरूरत थी चाचा से माँग लिया। चाचाजी फिर अपनी गगरी भर लाये। मुखमार्जन का सामान सबके पास था नहीं। चाचाजी ने अपना बनाया हुआ नायाब मंजन सबको दिया। अब तो सभी सहयात्री चाचाजी की इस परोपकार-वृत्ति देखकर उनका आदर करने लगे। नाश्ते-पानी के समय सबने उन्हें निमंत्रित किया। किन्तु चाचाजी ने

ब्राह्मणत्व का अभिमान प्रकट करते हुए नम्रता से निवेदन किया कि बिना स्नान किये मैं कुछ खाता-पीता नहीं। इसका प्रभाव सब पर पड़ा—विशेष कर सेठजी पर। उन्होंने कहा—'अच्छा महाराज, अगले ठहराव पर झट से स्नान कर लेना, म्हारे पास घर को बनायड़ो, पूरी साग है। खरीदने-ग़रीदने का काम नहीं।' ऐसा ही हुआ। बर्द्वान में चाचाजी ने डटकर जलपान किया, और सेठजी की जयजयकार मनाई।

यहाँ चार मुसाफिर उतरे, और सात चढ़े। डब्बा फिर भर गया। कुछ को बेंच को नीचे बैठना पड़ा। इसके बाद जो गाड़ी खुली तो दुनिया भर के विषयों पर गप-शप और विवाद शुरू हुआ। खास कर युद्ध, सिनेमा और स्वराज्य पर ही काफ़ी बहस हुई। किसी विषय पर बात शुरू होती, विषयान्तर पर लोग बहक जाते, चाचाजी भी सभी विषयों में जमकर भाग लेने लगे।

एक सज्जन जो बर्द्वान में सवार हु' थे, छिपी निगाहों से सबके चेहरे और असबाब घूर रहे थे। (जो वास्तव में आबकारी के चर थे) उनकी दृष्टि हर तरफ़ से घूमकर चाचाजी और उनके विचित्र सामानों पर अटक जाती। उन्होंने उनसे पूछा—'कहाँ तक जायँगे?' चाचाजी 'जहाँ तक गाड़ी चली चले।' उन्होंने कहा—'ओ, तब आप कलकत्ता चल रहे हैं?' चाचाजी—'जी हाँ।'

फिर भंगघोटना की ओर संकेत करके उन्होंने पूछा—"इसके भी प्रेमी हैं आप ?"

चाचाजी—'बिना प्रेमी हुए ही प्रेम-देवता का अस्त्र लिये चलता हूँ ? क्या आप भी शौक रखते हैं ?' उन्होंने जरा झेंप दिखलाते हुए कहा—

"हाँ, जरूर; मगर बाजारू और मामूली से सन्तोष नहीं होता।"

चाचाजी—'अजी मैं ऐसी चीज दूँ कि आप २' से ३६ घण्टे तक भूले रहें, और इसके बाद जन्म भर याद रखें।' उन्होंने कहा—

'पास में है ?"

चाचाजी—'क्या आप मूर्ख समझ रहे हैं मुझे ? आबकारी के कुत्तों की घ्राण-शक्ति बड़ी तेज होती है, इसलिये जरा सावधानी से रहता हूँ। पास में तो चुटकी भर भी नहीं है, लेकिन घर पर चलिये। छटाक-आधपाव यों ही दे दूँ, लेकिन अधिक के लिये दाम लगेंगे।'

उन्होंने जोश से कहा—"अजी दाम की चिन्ता न कीजिये ! लेकिन बात पक्की रही।"

चाचाजी—"एकदम पक्की। मगर (धीरे से) मैं बिना टिकट हूँ। जल्दी में ले नहीं सका।"

उन्होंने कहा—"कोई चिन्ता न कीजिये।"

हवड़ा स्टेशन पर चचाजी स-सम्मान और स-सामान उनके

साथ उतरे। गेटकीपर को उन महाशय ने मुस्कुराकर न जाने क्या कहा और फिर दोनों बाहर हुए। उन्होंने पूछा—'किधर चलियेगा ?' चाचाजी ने नरमी से उत्तर दिया —

'देखिये साहब, मेरा यहाँ घर-वर नहीं है, और न किसी से जान-पहचान ही है। पहले पहल कलकत्ता आया हूँ। ग़रीब ब्राह्मण हूँ। जल्दी में बिना टिकट चढ़ गया। और आपके द्वारा बचकर निकल आया। अब आप जैसा मुनासिब समझिये, कीजिये। मैं तो आपको और आपके बाल-बच्चों को आशीर्वाद देता हूँ।'

इतना सुनते ही महाशय जी की आँखें गुस्से से लाल हो गईं। पकड़ कर ले चले पुलिस में देने। फिर न जाने क्या जी में आया ज़ोर से चचाजी को ढकेल कर बोले—"बदमाश, पाजी, दूर हो यहाँ से" और तमक कर एक ओर चलते बने। चाचाजी के भी जान में जान आई।

एक कुली ने टोका—"कहाँ जाना है ? लाइए सामान।" दूसरे कुली ने झोली पकड़ कर कहा—"लाइये, मैं ले चलूँ, बड़ा बाजार ही तो जाना है ?" इतने में कई रिक्शेवाले भी आ गये। "रिक्शा चाहिये, कहाँ जाना है", "इधर लाइये, गठरी-मुठरी"। ....चाचाजी ने हबड़ा के इन पंडों से यह कहकर छुटकारा पाया कि 'अरे बाबा तुम लोग कृपा करो, मैं अपनी चरणदास की जोड़ी पर जहाँ जाना है खुद चला जाऊँगा।' आगे बढ़ने पर चाचाजी ने

देखा कि बस और ट्राम में इतनी रेलापेली और भयंकर भीड़ है कि लोगों का चढ़ना-उतरना क्या, ठीक तरह खड़े रहना भी कठिन है। भीतर जगह न मिलने से लोग पायदानों और बस के पीछे खड़े हैं—ड्राइवर और कण्डाक्टर परेशान हैं—पुलिसवाले हथडंटे से कुरेद रहे हैं। फिर भी ठेलम-ठेल और घुस-पैठ की कला-बाजियों का दम बेतरह घोंटा जा रहा है। चाचाजी घबड़ा कर बोल उठे—"बाप रे बाप, युद्ध ने मानो, मगर हर जगह-हर रूप में अपने जर्म्स फैला रखे हैं।" एक पुलीसवाले से उन्होंने पूछा—"क्यों भाई, आदमी ज्यादा बढ़ गये हैं, या ये सवारियाँ ही कम हो गई हैं?" उसने लाटसाहबी ढंग से उत्तर दिया—"दोनों बातें हैं, मगर तुम्हें मतलब? चलो एक किनारे हो जाओ।' चाचाजी एक ओर हो गये। अखबार बेचनेवाले चुने हुए समाचारों को, चुने हुए लहजे में चिल्ला रहे थे। चतुराननजी आकर्षित हुए। इनकी ही तरह और भी कितने मुफलिस समाचार-जिज्ञासु हाकरों के पास पहले से ही इस ताक में खड़े थे कि ताज़ा खबरों की एक-दो झलक मिल जाये। कई तो सिर्फ मुख्य पृष्ठ का हेडिंग ही देख पाये थे कि हाकर की फटकार सुनकर चलते बने। कई ढीठ फटकार सुनने पर भी पन्ने उलटने लगे तो हाकर ने मजबूरन पत्र छीन कर उन्हें धता बताया। चाचाजी ने रूपक रचा। एक शांत स्वभाववाले हाकर के समीप जाकर बोले—"क्यों जी, इसके सम्पादक ऑफिस में ही रहते हैं या और

कहाँ ? उनसे मिलना है। मैं रिश्ते में उनका गाँव घर का चाचा हूँ, और इस पत्र का लेखक भी। क्या आज मेरा कोई लेख छपा है---शास्त्री बुद्धिसागर के नाम से ?' हाकर एक प्रति उनके हाथ में देकर बोला—"आप खुद देख लीजिये। सम्पादक जी के बारे में। कुछ नहीं मालूम। आफिस का पता इसी में छपा है।" जो कुछ देखना था चाचाजी चटपट देख पत्र वापस करते हुए चलते बने। ' नये पुल पर उनकी निगाह गई। चौंक कर बोल उठे-'ओह कितना विराट, कितना विचित्र, कैसा सुन्दर-असुन्दर का सम्मिश्रण। वाह, तारीफ है बनानेवाले की।" फिर पुराने पुल को देखा। उपेक्षिता नायिका की तरह - सौतिन की सताई हुई सीता की तरह,---एक ओर उदास और मलीन घेरा में पड़ा हुआ है। तख्तबन्दीजे गेट बन्द कर रखा है। मानों प्रियतम ने एक विदेशिनी विशालकाया-लम्बोदरी सुन्दरी* लिये सब कुछ खोल कर अपनी गृहस्थ-दलित यौवना-जीवन-संगिनी का साथ छोड़, उसे उसी के जर्जर हृदय-कपाट में बन्द कर, उसके लिये सब कुछ बन्द कर रखा है। हाय रे स्वार्थी संसार! जिसने करोड़ों-अरबों को कलेजे से लगा कर पार उतारा, दर्जनों तरह की लाखों सवारियोंको अपने ऊपरसे आने-जाने दिया, लाखों स्टामरों का कलेजा चीर कर इधर-से-उधर किया, न जाने कितने ज्वार-भाटे का आलिंगन किया, पच्चासों साल से भागीरथी को कमर में कमरबन्द की तरह शोभायमान रहा—उसी की यह दशा ?"

---

*उस समय का चित्र है, जब नया पुल बना ही था—और पुराने पुल में घेरा लगा दिया गया था।

चाचाजी भावुकता में अधिक न बहे, क्योंकि चिलचिलाती धूप सर पर आग बरसा रही थी; और पेट में चूहे उछल-कूद रहे थे। नये पुल का आनन्द लूटते हुए पार पहुँचे। देखा, यहाँ बहुत कुछ अदल-बदल गया है। ट्राम का जंकशन, प्लेटफार्म, नये ढङ्ग से बन गये हैं। फिर देखा उसी के पास टीन का घेरा जो पूरब से दक्षिण कोण बनाता हुआ पश्चिम घूम गया है—पुराने पुल के पूर्वी गेट तक, दूसरी ही 'गङ्गा' बह रही है। 'सरस्वती' की लुप्त-लुप्त धारा की तरह उसकी सहस्र धाराएँ भी राजपथ में लुप्त हो रही हैं। कइयों को देखा चाचाने 'धाराओं' पर बैठकर धारा बहाते हुए। इनकी लघुशंका भी जँधिये में तीव्र शंका उपस्थित करने लगी। चाचाजी जैसे ही बैठे कि एक महातीव्र दुर्गन्ध इनकी घ्राण-शक्ति को चुनौती दे गई। फिर उन्होंने ध्यान से देखा कि वहाँ तो वैतरणी का एक फैला हुआ सूक्ष्म संस्करण अपनी संपूर्ण कलाओं से शोभायमान और सुगन्धायमान है।

एक कान्स्टेबिल ने डाटकर पूछा—"पेशाब क्यों किया ?"

चाचा—'ज़रा नजर घुमाकर देखो, यह सिर्फ पेशाब करने की ही जगह है।'

कां०—'ओ, तब चलो थाने।'

चाचा—'मगर यहाँ तो पेशाब ही खता हो गई - लघुशंका की ऐसी दीर्घशंका हुई....'

कां०—'बस छोड़ो बक-बक, चलो मेरे साथ।'

चाचा—'साथ तो जहाँ कहो, चलने को तैयार हूँ, मगर बक-बक कैसे छूट सकती है सिपाही जी।'

का०—'बड़े अजीब हो जी ? आखिर तुमने वहाँ पाखाना-पेशाब क्यों किया ?'

चाचा—छि-छिः-छिः; यह क्या आप मुँह से निकाल रहे हैं ?

का०—'तो क्या कर रहे थे—यहाँ ?'

चाचा—आया तो था मैं पेशाब ही करने, लेकिन।'

का०—'बड़े बातूनी हैं आप! खैर, जाइये, मगर फिर कभी—'

चाचा—'इस 'जरूरत-रफ़ा रेफाहे आम' के पास न आइएगा, यही न ? अच्छा भाई, कभी न आऊँगा।'

चाचा एक धर्मशाले के दरवाजे पर पहुँचे। देखा, उसके फुटपाथ पर, धर्मशाले के मालिक के एक सम्बन्धी—जो धर्मशाला में ही ठहरे थे—का छोटा लड़का टट्टी फिर रहा है। चाचा की विचित्र सूरत देखते ही, उसके देवता कूच कर गये। चिल्ला कर भीतर भागा। अन्दर से डण्डा लिये दरवान झटकता हुआ बाहर आया और चाचा का देवदुर्लभ दर्शन पाकर कृतार्थ होने के बदले कड़ककर बोला—"यहाँ ठहरने की जगह एकदम नहीं है।" उसी लहजे में चाचा ने जवाब दिया—'और यहाँ लड़के के टट्टी फिराने की जगह है ?'

दरवान—'क्यों नहीं है ? सारे कलकत्ता के फुटपाथों पर

देखिये। इससे भी बढ़कर घिनौने दृश्य दिखाई देंगे। थूक—खंखार, कूड़े करकट और फलों के छिलके तो आम तौर पर बिखरे ही रहते हैं।'

चाचा -"तुम्हें हर जगह की क्या खबर ?"

द०० --"पचीस साल से दरवानी करता हूँ। और कलकत्ते के दरवान घर-घर के 'दाई' होते हैं। इसके अलावा यहाँ के एक प्रसिद्ध पत्र में हर तरह की रचनाएँ छपवाया करता हूँ। इसलिये कलकतिया दाँव-पेंच भी मोटा-मोटी समझ लेने की चेष्टा किया करता हूँ।"

चाचा- "यार, तुम तो पूरे घुटे हुए निकले। अफसोस यही है कि मेरा-तुम्हारा साथ न रह सकेगा। खैर, थोड़ी देर यहाँ सुस्ता लेने दो, क्योंकि सारी रात रेल की परेशानी में बीती, और स्टेशन से यहाँ तक पैदल ही आ रहा हूँ-तिस पर यह बोझा और ऊपर से रवि देवता की अग्नि-वर्षा। जरा ठंढई दंढई छनेगी, फिर चित्त को शान्ति प्राप्त होगी।"

दरवान—'ठंढई ? यानी बूटी-भाँग ?'

चाचा—"सोमरस कहो, सोमरस। जानते हो, देवताओं ने इसके लिये असुरों से ८८ हजार वर्ष तक युद्ध किया, तब यह दिव्य बूटी हाथ आई थी।'

दरवान- "मगर कलकत्ते में तो १५ दिनों से इसकी दूकानें बंद हैं, फिर आपके पास ?"

चाचा—'चतुरानन चाचा के चमत्कार को तुमने अभी देखा ही क्या है । अच्छा, क्या तुम भङ्गी हो ?'

दरवान..."अरे राम, राम, राम !"

चाचा..."मतलब यह कि भंग भवानी के भक्त हो ?"

दरवान—"आदतन छाननेवाला हूँ । नहीं मिलती तो सौंफ इत्यादि के साथ तांबे का पैसा घिसकर या गाँजे में से बीज वगैरह छाँट कर, उसे ही पीस कर पी लेता हूँ ।"

चाचा—'मत घबराओ' मैं कहीं भी रहूँगा, तुम्हारे लिए नित्य सन्ध्या समय एक चकाचक ग्लास पहुँचा जाया करूँगा ।"

दरवान—'क्या करूं, जगह तो नहीं है-फिर भी आपसे ऐसा प्रेम हो गया है कि कुछ न कुछ प्रबन्ध करना ही पड़ेगा ।'

कहना नहीं होगा कि चाचा जी को छोटी सी-मजे की कोठरी मिल गयी ।

गहरी छानने के बाद स्नानादि से निपटने पर चाचाजी के सामने वही समस्या आ उपस्थित हुई, जिसका समाधान आजतक न हुआ—और न कभी होगा । चाचाजी के ही शब्दों में वह सनातन है—अनादि है—अनिवार्य है—व्यक्तिगत है—सामाजिक है—सामूहिक है—धार्मिक है—राजनीतिक है—वही जीवन है—वही सृष्टि है—अर्थात् पेट की समस्या । उन्होंने दरवानजी से कहा भूमिका बाँधकर—'चूहे बड़े जबरदस्त हैं ?'

दरवान—'अजी, कुछ न पूछिए, बिल्ली-बिल्ले की हिम्मत नहीं इन्हें छेड़ने की, यहाँ के चूहे नामी होते हैं ।'

चाचा—'और उछल कूद रहे हैं—किस तरह ? मानो घुड़दौड़ मचा रहे हों।,

दरवान—'कहाँ है ? ऐसा न हो कि सामान नुकसान कर दें। बड़ी कठिनाइयों से खदेड़े रहता हूँ। किधर हैं ? मुझे तो दिखलाई नहीं पड़ते।'

चाचा—'ये दिखलाई नहीं पड़ने के' अनुभव करने के हैं।

दरवान—'क्या कह रहे हैं आप ?'

चाचा—'ठीक कह रहा हूँ। भइया, वे उछल रहे हैं—हुरदङ्ग मचा रहे हैं और बेतरह मचा रहे हैं।'

दरवान—'आखिर कहाँ ? (हँसकर) क्या रंग में आ गये गुरु।'

चाचा—'तभी तो रंग बदरंग हो रहा है। सच कहता हूँ—चूहे कूद रहे हैं—बेतरह कूद रहे हैं।'

दरवान—'ओह, आप तो बुझौवल बुझा रहे हैं। साफ-साफ कहिये न ?'

चाचा—'तुम कहते हो, मैं लेख-कविताएँ रचा करता हूँ—महावरा भी नहीं जानते कि 'चूहे कहाँ कूदा करते हैं ?'

दरवान—'कहाँ कूदा करते हैं ? (कुछ सोचकर) अपनी माँद के पास बिलमे-अन्न के बोरों पर।'

चाचा—'बस, रह गये तुम वही…। अरे बच्चू, चूहे कूदा करते हैं—खाली पेट में, समझे। यही महावरा है।'

दरवान—'तो गलत है। चूहे को कूदना चाहिये वहाँ, जहाँ अन्न का भंडार है। गरीबों के यहाँ-खाली पेट वालों के यहाँ इनके कूदने का महावरा बदल देना चाहिये।'

चाचा—'अच्छा भइया, इस विषय पर फिर हमलोग विचार करेंगे अभी तो मूल समस्या-समाधान का उपाय होना चाहिये। मारे भूख के अँतड़ियाँ अन्तर्वेदना के टूटे तार पर करुण विहाग अलाप रही हैं।'

दरवान—'वाह, क्या छीला है छायावाद को तुमने गुरु! काली किरिया, चित लहालोट हो गया। अच्छा ठहरिये। अभी आया।' इतना कहकर दरवान अपनी कोठरी में जाकर, करीब सेर भर मिठाइयों का चूरा—जिसमें कुछ लड्डू, सूखी बूँदिया, सूखी जलेबियाँ और सुहाली थे—ले आया, और चाचा के सामने रखकर बोला 'हमारे सेठजी के यहाँ विवाह था, वहीं से यह सब आया है। अभी जलपान कीजिये, फिर रसोई—।'

चाचा—'थोड़ा तुम भी लो, अकेले आनन्द नहीं आयेगा।'

दरवान—'मैं जलपान करके उठा ही था कि आपका शुभागमन हुआ। आप खाइये।'

फिर क्या था। चाचा अप्रतिद्वन्द्वी रूप से मैदान मारने लगे। उनके मुखयंत्र की दंत-चक्की अविराम गति से चक्कर लगाने लगी। बीच-बीच में बातचीत भी होती जाती थी। चाचा ने पूछा—'तुम्हारा नाम?'

दरवान ने उत्तर दिया—'राजकुमार, और आपका ?'

चाचा—'चतुरानन चौबे ।'

दरवान—'मगर मैं तो चाचा ही कहूँगा ।'

चाचा—'ठीक है । बड़ा आनन्द रहेगा-जब मिल बैठेंगे दीवाने दो ।'

राजकुमार—'अच्छा चाचा तुम यहाँ क्या करने आये ? कोई कारोबार करोगे या—।'

चाचा—मैं यहाँ क्यों आया ! यह तो इस प्रांत के आकर्षण से पूछो ब्रिटिश साम्राज्य की दूसरी महानगरी के जागते-जादू से पूछो जिसके चुंबक से खिचकर हमारे पुरखा यहाँ भेंड़ बन जाते रहे हैं । आखिर सारा कलकत्ता यहाँ क्यों बसा हुआ है ? तुम्हीं किसलिये आये—बताओ ! बस जो सबका उद्देश्य है वही मेरा भी है ।

राजकुमार—मगर उद्देश्य को कार्य रूप में परिणत कैसे कीजियेगा ?

चाचा—पहले तो दर्शनीय-स्थानों का दर्शन करूँगा । इसके बाद समाचारपत्रवालों से मिलूँगा सार्वजनिक संस्थावालों से भेंट करूंगा । सिनेमावालों को भीतर से देखूँगा । काउंसिल एसेम्बली-कारपोरेशन के सदस्यों की निकट से जानकारी प्राप्त करूंगा । हर तरह की सभा परिषद सुसायटी गोष्ठी एसोसियेशन समाज दल समिति सम्मेलन आदि में भाग लूँगा । इसके अतिरिक्त……

राजकुमार—'ठीक है मालूम हो गया । किन्तु सबसे प्रथम आपको राशनिंग का प्रबन्ध करना होगा । कल सवेरे चलेंगे ।'

चाचा—अच्छी बात है ।'

[२]

दूसरे दिन राजकुमार दरबान के साथ चाचा वार्ड के रेशनिंग आफिस पहुँचे । काफी लम्बा-चौड़ा दफ्तर था । डिपार्टमेण्टल तख्तियां टँगी थीं । उन्हीं के नीचे बाबू लोग कुर्सी-टेबल पर डटे काम में कम लेकिन बातों में ज्यादा मशगूल थे । प्रार्थियों की काफी भीड़ थी । कोई रेशन कार्ड के लिये दर्ख्वास्त देने आया था कोई लेने आया था कोई केवल पूछताछ करने ही आया था । प्रार्थियों की गिड़गिड़ाहट विनती उग्र जानने की इच्छा और बाबुओं की हुकूमत हुज्जत अँकड़ व्यस्तता-प्रदर्शन आदि अध्ययनीय और मनोरञ्जक थे । प्रायः चार मिनट तक चाचा घूर-घूरकर स्थिति का अध्ययन करते रहें । फिर एकाएक बहुत ही गम्भीर आवाज में "चन्द्रकान्ता' के ऐयारों की परिचित बोली में बोल उठे —जय माया की" । सभी चौंक कर इनकी ओर देखने लगे । विचित्र सूरत और विचित्र वेश देखकर कई विद्रूप में विहँस उठे । एक दो के मुख से व्यंगात्मक अस्फुट शब्द भी निकले । अधिकांशों को कौतूहल हुआ । एक बाबूनुमा वर्दीधारी पास आकर बोला—"आपनी की चान ?' राजकुमार ने जवाब दिया—हम लोगों को रेशन कार्ड चाहिये । अङ्गरेजी सिनेमा-एक्टर के अपभ्रंषी पोज में मुट्ठी बाँध अंगूठे से एक ओर इशारा करते हुए-वर्दीधारी ने कहा

'उदिके जान ।' चाचा भतीजे वहाँ पहुँचे। वहाँ एक मलीन वस्त्रधारी-छोकरानुमा बाबू कुर्सीपर अकड़ा बैठाथा। दीवारमें तख्ती टंगी थी 'इन्क्वारी'। यहाँ प्रायः डेढ़ मिनट तक उसके सामने खड़े रहे, किन्तु उसने कुछ नहीं पूछा। चाचा ने कहा—'रेशनकार्ड चाहिये।' यह अनसुनी करके दो नवागन्तुकों से न जाने क्या फुसफुस कर, उन्हें दो छपे फार्म देकर बीड़ी सुलगाने लगा। चाचा ने फिर कहा—'अजी सुनते हो नवाब साहब, मुझे रेशन कार्ड चाहिये।' उसने बीड़ी का धुआँ ऊपर फेंकते हुए कहा—'ईहां नेई, उ खाने रेशन कार्ड मिलता, उदिक जावो।' चाचा की त्यौरी चढ़ी, बोले—'अभी तो वह बतला गया कि यहाँ मिलता है और तुम बोलते हो वहाँ। बात क्या है?' उसने धीरे से कहा 'हाम ठीक बोलता, ईहाँ रेशन कार्ड नेई मिलता। ईहाँ सिर्फ उसका दरखास्त करने का फार्म मिलता।' राजकुमार ने कहा 'अरे हाँ हाँ, पहले तो वही चाहिये बाबू! दीजिये न!' वह बोला—'अभी फिनीस हो गया।' चाचा गुर्रा उठे 'तब कब मिलेगा? किसके पास मिलेगा?' 'हाम नेई बोलने सेकता अबी।' कहता हुआ वह कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। चाचा आपे से बाहर हो गये। टेबल पर जोर से हाथ पटककर गरज उठे। दफ्तर में हलचल मच गयी। कुछ प्रार्थी बोल उठे 'हाँ साहब, इनकी यही आदत है। किसी को सीधा जवाब नहीं देते।' दफ्तर के बड़े बाबू ने डाँट कर पूछा—'की व्यापार आछे रे धीरेन?' धीरेन—'देखूना सर' इ

भद्रलोक अकारने आमाके...।' चाचा बीच में ही बात काटकर बोले...'मैं दरख्वास्त का फार्म माँगता हूँ तो ये कहते हैं—खत्म हो गया! पूछता हूँ कब मिलेगा तो कहते हैं—अभी हम बतला नहीं सकते!' बड़े बाबू इन्क्वायरी बाबू पर बरस पड़े—'इफ फार्मस आर नाट विथ यू, देन यू उड हैव काल्ड फौर इट!'—इतना कह कर पियन के हाथों उन्होने फार्म का बण्डल भेजवा दिया। चाचा ने चार माँग लिये—देखा तो फार्म अङ्गरेजी में छपे हैं। राजकुमार से बोले—'हिन्दी में भी क्यों नहीं छपवाया गया? चलो, बड़े बाबू के पास!' राजकुमार ने रोका—'चाचा, इस बारे में बखेड़ा करना बेकार है। हमलोग साधारण व्यक्ति हैं। हिन्दी के हिमायती बड़े लोग—हिन्दी संस्थाएँ, हिन्दी-पत्र इस बारे में चूँ तक नहीं करते, तो हम लोग क्या कर सकेंगे!' इतने में एक दूसरा वर्दीधारी पहुँचा और बोला—'फार्म भरवाना हो तो उस बाबू से लिखवा लीजिये।' दोनों उस जगह पहुँचे। देखा—यजमानों की भीड़ है और फी फार्म दो आने लिखाई वसूल की जा रही है। चाचा बोले—'चार फार्म हैं।' वह बिना आँख उठाये ही बोला—आठ आना देने होंगे।' चचा फिर गर्म हुए, लपके बड़े बाबू के पास, बोले—'अजी साहब वह फी फार्म दो आने लिखाइ माँगता है। 'गरीब लोग—भूखों मरनेवाले कहाँ से दे सकते हैं?' बाबू भी तमककर बोले—'वो लिखनेवाला भी गरीब हाय—हमारा नौकर नहै है—सरकार का नहै है।

आवका भी नई है, फिर किस माफिक खाली पेट लिखेगा ?' चाचा ने उसी लहजे में जवाब दिया—'तो ग़रीब गरीब को खाने लगे—यही इन्तज़ाम है आपका ?' बाबू भड़क उठे-'जाओ बाबा, हमारा माथा मत खराब करो। हम लोग भी आदमी हैं।' चाचा धीरे से बोले 'हाँ, इसमें शक की गुंजाइश तो नहीं थी, लेकिन—' लेकिन-वेकिन कुछ नई—तुम फार्म लिखवा कर ले आओ। और हाम कुछ बात नेई करने चाहता।' रंग-बदरंग होते देख राज-कुमार चाचा का हाथ पकड़कर बाहर ले आया। दूसरा वर्दीधारी फिर पहुँचा। वह ए० आर० पी० का कर्मचारी था। बोला—'देखिये, काम सहूलियत से बनता है, झमेला करने से कुछ फायदा नहीं। किसी जान पहचानवाले से लिखा लाइये। यह तो मेहनताना लेगा ही।' चाचा ने उससे पूछा—'अच्छा दोस्त, यह तो बताओ—हर एक को कितना अन्न मिलता है ?' 'पाव भर आटा या पाव भर चावल' वह बोला—

चाचा—'मगर कितने ही ऐसे हैं जो तीन पाव एक दफ़ा खाते हैं—सो ?'

वह—'कुछ भी हो, हर एक को पाव भर ही मिलेगा।'

चाचा—'तीन पाव खानेवाले को भी, और आध पाव न पचा सकनेवाले को भी पाव भर ? अच्छा, देखो भाई, हम भी तीन पाव खानेवालों में से हैं। क्या कोई ऐसा उपाय नहीं है, जिससे कि'—

वह—'अजी कलकत्ते में किस बात का उपाय नहीं है ? ठंढे मन से, हिम्मत से, चालाकी से, मिल-जुल कर, क्या नहीं किया जा सकता ?'

चाचा—'तो बोलो क्या करना होगा ?'

वह—'मगर आप कुछ अजीब से हैं, मैं उपाय बताऊँ और आप...!'

चाचा—'नहीं-नहीं, अब कुछ नहीं करूँगा। जैसा आप कहेंगे, वैसा ही होगा।'

वह—'तो सुनिए, आपको ६ रेशनकार्ड लेने होंगे, जिनमें तीन तो मेहनताने में हम लोग ले लेंगे और तीन से आपका काम चल जायगा।'

चाचा—'यह कैसे ?'

वह—'ऐसे कि ६ वार्डों से इसका इन्तजाम करना होगा, और नाम में थोड़ा हेर-फेर कर दीजियेगा। लेकिन बाप का नाम बदलना होगा।'

राजकुमार—'बाप का नाम बदलना तो....'

वह—'अरे, फायदे की गुंजाइश हो तो लोग बाप तक को बदल देते हैं, और आपको तो सिर्फ नाम बदलना है।'

चाचा—'अच्छा, मंजूर। विष्णु के सहस्र-नाम की तरह हमें अपने बाप के भी कई नाम रखने में आपत्ति नहीं है। मगर छः हों रेशनकार्ड के माल के पैसे हम नहीं देंगे।'

वह—'यह भी कहने की बात है। आप सिर्फ अपने तीनके ही दाम देते रहेंगे। लेकिन पहले-पहल आपको छहो वार्डों में जाना होगा। फिर कार्ड मिल जाने पर तीन दिन—तीन जगह रेशन लाने तो जाना ही होगा।'

चाचा—'लेकिन भाई, कुछ बखेड़ा तो नहीं होगा?'

वह—'अजी आप भी कैसी बातें करते हैं?' सुनिये, करीब ५० लाख रेशनकार्ड बांटे जा चुके हैं। और क्या आप यह समझते हैं कि कार्ड एक-एक को मिला है? २०-२० कार्ड अकेले लेनेवालों को मैं जानता हूँ। और भी सुनिये। उनमें कई लाख आदमी अपने-अपने कार्ड छोड़कर या बेचकर देश चले गये, और उनके कार्डों का इस्तेमाल होता है। खैर, तो बात पक्की रही न?'

चाचा—'हाँ साहब पक्की—एकदम पक्की।'

आठ दिन के अन्दर ही सब इन्तजाम हो गया।

[३]

धीरे-धीरे चाचाजी की चर्चा चारो ओर फैलने लगी। राजकुमार चलता-फिरता और जवानी विज्ञापन था ही। भिन्न-भिन्न स्वार्थों के स्त्री-पुरुषों का आना-जाना आरम्भ हुआ। चाचा हरफन मौला ठहरे। किसी को असाध्य रोग की दवा बतला रहे हैं, किसी को भूत, वर्तमान, भविष्य समझा रहे हैं। किसी के लिये झाड़-फूँक अथवा टोना-टोटका की व्यवस्था कर रहे हैं। कभी सत्यनारायण भगवान की, कभी एकादशी-माहात्म्य की, तो कभी शनीश्चरदेव की कथा कह रहे हैं, कभी कीर्तन का आयोजन कर

रहे हैं। इन कार्यों के लिये चाचा बाहर भी जाने लगे। सबसे बढ़कर उनका बनाया हुआ 'वज्रदन्ती' नामक दन्तमञ्जन खूब चलन लगा। इन सबसे काफी आय भी होने लगी। इस तरह चतुरानन चाचा चकल्लस के साथ चौतरफी चाँदी चीरने लगे।

रात में अकसर राजकुमार के मित्रों की मंडली—जिसमे दूसरे-दूसरे दरबान एवं उनके मित्र, प्रेसों के निम्न कर्मचारी तथा उन्हीं-की श्रेणी के अन्य लोग होते—जुटती। गपशप, ज्ञानचर्चा, विनोद, गायन तथा कविता-पाठ का रङ्ग जमता। कहना नहीं होगा कि चाचा सभापति और राजकुमार मन्त्री की तरह मालूम होते। कभी-कभी लोग चाचा से प्रश्न पूछते, तो वे अपने अलबेले ढङ्ग से बड़ा ही मनोरंजक उत्तर देते। एक दिन एक ने पूछा-'अच्छा चाचा जी यह सब मानते हैं कि युद्ध संसार के सारे अनर्थों की जड़ है, फिर भी सब मिलकर उसको रोकने का उपाय क्यों नहीं करते ?'—

चाचा ने उत्तर दिया—'अरे भइया' युद्ध तो सृष्टि के आदि-काल से ही चला आता है। बल्कि ऐसा समझो कि अगर क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर—यानी पाँचों तत्वों में संघर्ष न होता तो किसके बाप की शक्ति थी कि सृष्टि रचना करता ? और सुनो, अगर देवताओं तथा दानवों में द्वन्द्व न होते रहते तो भग-वान के अवतारों का पता लापता—हाउस में भी न लगता। भला कोई बताये तो कि अगर 'लक्ष्मी' न होती तो उसके वाहनों के

बिना दुनियाँ कैसे चलती? 'धनवन्तरी' न टपके होते तो सारा संसार ही अस्पताल बन गया होता। 'ऐरावत' न मिलता तो इन्द्र किस पर चढ़कर असुरों से लड़ते? 'अमृत' प्रकट न होता तो देवता अमर कैसे होते? 'सुरा' न मिलती तो देव-दानव की दुरङ्गी दुनिया का दिवाला ही निकल गया होता। 'विष' न प्राप्त होता तो हमारे शङ्करजी नीलकंठ कैसे कहलाते? मनुष्यों में हत्याओं एवं आत्महत्याओं की हलचल से कचहरियों के अधम-ऊधम-ऊसर खेत में हल कैसे चलता? 'कौस्तुभ रत्न' के बिना विष्णु भगवान शोभा हीन ही रहते। 'कल्पवृक्ष' न हाथ लगता तो देवलोक मुफ़लिस महल्ला क़रार दे दिया जाता। मतलब यह कि सुरासुर युद्ध का ही परिणाम था कि समुद्र-मंथन के द्वारा इस प्रकार के उपयोगी चौदह रत्न निकले। और भाई, अगर राम-रावण में लङ्का-कांड न मचा होता तो बाबा तुलसीदास तथा रामायण की प्राप्ति कहाँ से होती? यदि कौरव-पाण्डव का मशहूर महाभारत न मचा होता तो वेदव्यास, श्रीमद्भागवत और गीता के बिना हिन्दू जाति की क्या गति होती? भीम की भीषणता, अर्जुन की बाणविद्या, द्रोण का रणकौशल, भीष्म की महत्ता, विक्रमादित्य का विक्रम, खूनी अशोक का सशोक परिवर्तन, चन्द्रगुप्त की रणचातुरी, पृथ्वीराज का पराक्रम, अल्हा-ऊदल की वीरता, नेपोलियन के नर-संहार और हार का नाटक, अमेरिका की स्वाधीनता, फ्रांस की क्रान्ति, दकियानूसी रूस की कायापलट, ब्रिटेन का प्रजातन्त्र, चीन

की पिनकटूट आदि-आदि हम युद्ध के बिना कैसे जानते ? मैं कहता हूँ कि अगर विश्व-लाड़िली लड़ाई की कृपा न होती तो हस्तिनापुर की असरत भरी हस्ती पर दिल्ली की दिवार कैसे खड़ी होती ? संयोगिता के संयोग से पृथ्वीराज और जयचन्द न लड़े होते तो मध्ययुद्ध के भारत का इतिहास पढ़ने के नाम पर लोग कोपर चाटते। शिवाजी, औरङ्गजेब, अकबर, प्रताप, तेगबहादुर आदि की कीर्ति-अकीर्ति तथा चित्तौर के जौहर-व्रत का बीज वपन कैसे होता यदि युद्धदेव दया न दर्शाते ? यदि वीरता की जननी युद्धकाली अपनी कराल करामात न दिखाती तो हिन्दी के आदि कवि 'चन्द' और वीर रस के रसिया 'भूषण' कहाँ मिलते ? यहीं देखो न, अगर आपस में ही लड़ाई-भिड़ाने न हुई होतीं तो हमारे स्वदेश को सुफेद शासन का सौभाग्य कैसे प्राप्त होता ? और कितने ही क्रान्तिकारी एवं सुविचारी देशी देताओं के नेतृत्व-नृत्य से हमारा नन्हा नसीब निहाल कैसे होता ? यह वर्तमान युद्ध न छिड़ता तो चर्चिल, हिटलर, मुसोलिनी, स्टालिन, रूजवेल्ट और तोजो तथा उनके देशों का ज्ञान हम लोगों को किस प्रकार होता ? सच तो यह है भाइयो कि संसार के समस्त महापुरुष कृष्ण, ईसा, बुद्ध, मुहम्मद, महावीर, ज़रदोस्त आदि और उनके धर्म तथा ग्रन्थ युद्ध से ही जन्मे और इन्हीं के लिये संसार में अधिक युद्ध हुए। जिस प्रकार रोगग्रस्त शरीर के लिये जुलाब जरूरी है, उसी प्रकार सदियों की सड़ी हुई सृष्टि के सुधार के लिये युद्ध का जमालगोटा भी जरूरी है।'

एक दूसरे ने पूछा—'अच्छा चाचाजी, युद्ध में जीत किसकी होगी ?'

चाचा—'जिसके पक्ष में भगवान, सत्य और धर्म होंगे।'

वह—'तो, ये जिसके पक्ष में होंगे ?'

चाचा—'जिसकी जीत होगी।'

वह—'यह कैसे ?'

चाचा—'कैसे क्या ? वह तो सदा से होता चला आया है कि विजयी ही धर्मात्मा, सत्यवादी और भगवद्भक्त होते हैं। कवि, साहित्यकार, सन्त उन्हीं के गुण गाते हैं और संसार को उन्हीं के आदर्श पर चलने का उपदेश देते हैं।'

दूसरा—'यह तो कहिये चाचा, युद्ध कब तक समाप्त होगा ?'

चाचा—(हँसकर) 'जब सृष्टि समाप्त होगी।'

दूसरा—'क्या मतलब ?'

चाचा—'अरे भाई, युद्ध कभी समाप्त नहीं होता, हाँ, इतना अवश्य होता है कि एक युद्ध दूसरे युद्ध का गर्भ धारण कर लेता है। और जब तक 'सन्तान पैदा न होती, तब तक 'विश्राम' अर्थात् प्रसूतिकाल शान्ति-युग कहा जाता है। इसमें एक साल का भी समय लग सकता है, दस साल, पच्चीस साल या सौ साल का भी अन्तर हो सकता है।'

तीसरा—'चाचा, आपके ये विचार बड़े ही विचित्र हैं। इन पर एक पुस्तक लिखिये न।'

चाचा—'लिख तो रहा हूँ, पर छपाऊँगा नहीं।'

तीसरा—क्यों ?'

चाचा—'कहावत है गँवारों को सब कुछ दे, लेकिन अकल न दे, आर्यों ने शूद्रों के लिए वेदों का पठन-पाठन इसीलिए बन्द रखा था।'

राजकुमार—'तब क्या चाचा, आप चाहते हैं कि संसार में गँवारपन रहे ? वे शिक्षित न हों ? आत्मज्ञान प्राप्त न करें ?'

चाचा—अरे बाप रे मूर्खों को आत्मज्ञान प्राप्त हुआ और वे समझने लगे कि संसार असत्य है, असार है, यहाँ दुख ही दुख है, तो बस आत्महत्या कर लेंगे। फिर संसार चलेगा कैसे ?'

राजकुमार—किन्तु शिक्षा के लिए जो इतने उद्योग हो रहे हैं, इतनी युनिवर्सिटियाँ, कालेज, स्कूल, विद्यालय—'

चाचा—'ये सब मूर्खाभिमान-उत्पत्ति-केन्द्र हैं। इनमें किसी को सत्य-ज्ञान प्राप्त नहीं होता।'

एक खद्दरधारी कम्पोज़ीटर—'अच्छा चतुराननजी, भारत को स्वराज्य कब प्राप्त होगा ?'

चाचा—'जब इसके निवासी मुक्ति के सारे ढकोसलों का परित्याग कर देंगे।'

खद्दरधारी कम्पोजीटर—'जरा साफ समझाकर कहिये।'

चाचा—'साफ तो यह है भाई कि इस काल्पनिक मुक्ति से ही—भवसागर से छुटकारा पाने की खयाली बातों—ही यहाँ वालों

को गुलामी सिखा दी है। पूजा-पाठ, व्रत-त्यौहार, मन्दिर, यज्ञ-होम, जप, ईश्वर धर्म ये सब क्या हैं? मुक्ति पाने के साधन! कहा गया है कि इन पर भरोसा करके मनुष्य संसार-सागर से छुटकारा पाता है। इस प्रकार, जो दूसरे—दूसरे की शक्ति पर भरोसा करना सीखते आये हैं, वे अपने पर कैसे भरोसा करेंगे? और जब तक अपने पर भरोसा नहीं करेंगे, स्वावलम्बी—स्वराज्य के योग्य कैसे हो सकते हैं?'

राजकुमार—'तब योगसाधना क्या है? इतने योगी जो योगसाधना द्वारा मुक्ति की कामना करते हैं, सो?'

चाचा—'योगसाधना तो एक प्रकार के व्यायाम का आध्यात्मिक नामकरण मात्र है। और मुक्तिकामना करनेवाले योगी तो स्कूली-परिश्रम से देह चुरानेवाले विद्यार्थी की तरह हैं—जो मानव धर्म—सांसारिक-कर्तव्य में आलस करके, आराम के लिए कहीं भागना चाहते हैं। नहीं तो जैसा कि मैंने पहले कहा है—वे आत्महत्या करनेवाले मूर्ख आत्म-ज्ञानी हैं।'

राजकुमार—'तो सच्चा योगी कौन है?'

चाचा—'ड्राइवर!'

राजकुमार (आश्चर्य से) ड्राइवर? किसका?'

चाचा—'मोटर का, बस का, लारी का, रेल का, जहाज का, टैंक का, हवाई जहाज का। जानते हो, इन बेचारे सच्चे साधकों के हाथ में कितनों की जानें रहती हैं। तनिक चूके और गये! मगर ये

कितने सावधान रहते हैं। अतएव, इस युग में यही सच्चे अर्थ में योगी हैं।'

(५)

एक दिन चाचा स्टूडियो देखने चले। इन दिनों (सन् ४०-४१ में) स्थानीय अधिकांश स्टूडियोज में बम बोल रहा था। हरीसन रोड-चितपुर रोड के चौराहे पर ट्राम की प्रतीक्षा में देर तक खड़े रहे। जो आती, खचाखच भरी हुई। रुकती भी तो ५ उतरते १० चढ़ते, १० धक्कमधुक्की करके रह जाते। कुछ फुर्तीले बहादुर ऐसे भी होते, जो लपककर पाँवदान पर ही लटक जाते। चाचा ने कई बार चढ़ने की चेष्टा की; पर सफल न हो सके। कई धक्के खाने पड़े; एक-दो बार तो गिरते-गिरते बचे। अन्त में उन्होंने सोचा सहूलियत, सुविधा और सज्जनता की आशा छोड़, उसी टेकनिक से काम लेना चाहिये। इस बार जैसे ही ट्राम ने फुटपाथ का आलिंगन किया कि फुर्तीलों के फुर्ती दिखलाने के पहले ही, चढ़नेवालों की भीड़ चीरते और उतरनेवालों को ठेलते, चाचा झट ट्राम में चढ़ बैठे। दो-तीन के पैर दब गये और कुछको धक्के खाने पड़े। उन लोगों ने इन्हें बुरा-भला कहना शुरू किया। पर, चाचा अनसुनी कर गये! ट्राम चल पड़ी। कोलूटोला मोड़ पर जैसे ही लेडी सीट की एक जगह खाली हुई कि आप चट आसीन हो गये। दूसरी सीट में एक एंग्लो इण्डियन बुड्ढी बैठी थी। तमककर बोल उठी—"ओ, नो-नो; जनाना सीट हाय,

उठ जाव।" क्या करते, चाचा खड़े हो गये।

धर्मतल्ला में ट्राम बदलते समय चाचा ने देखा कि, यहाँ तो और भी मुश्किल है। चढ़ना और उतरना दोनों, शत्रु व्यूह में घुसने के दाँव-पेंच से कम नहीं है। दो में असफल होने के बाद, तीसरी में चाचा चढ़ ही तो गये। मगर हरीसन-चितपुर मोड़ से कहीं ज्यादा परेशानी उठानी पड़ी। पसीने से तर-बतर हो गये। भीड़ इतनी थी कि भीतर लोगों का बदन से बदन छिल रहा था और बाहर पाँवदान पर भी यारों में धक्कम-धुक्की मच रही थी। कुछ दूर बढ़ने पर थके हुए चाचा बैठने की तरकीब सोचने लगे। नजर पड़ गयी लेडी सीट पर। देखा, दो मर्द महाशय विराजमान हैं। और जब ट्राम-स्टेशन आता तो दोनों देख लेते कि कोई सीट की अधिकारिणी तो नहीं आ रही है। चाचा धीरे-धीरे उस-नीति का सहारा लेकर उनके पास जा पहुँचे। थियेटर रोड की मोड़ पर ट्राम ज्यों ही रुककर चलने लगी कि चाचा ने कहा "लेडी···लेडी सीट।" वे दोनों बेचारे हड़बड़ा कर उठ खड़े हुए और चाचा ने गद्दी दखल कर ली। दोनों दाँत पीसकर चाचा को कुछ सुनाना ही चाहते थे कि उनमें से एक ने साथी का साथ छोड़ कर, अवसरवादियों की तरह, चाचा का साथ दे दिया—अर्थात् चाचा के बगलवाली खाली जगह में बैठ गया। चाचा मुस्करा उठे।

टालीगंज डिपो में ट्राम से उतरकर चाचा ने एक इङ्गलिश वेष

धारी 'मोशाय' से पूछा-"फिल्म कम्पनी का स्टुडियो किधर है ?" वह बोला—"आप किस कोम्पानी में जायेगा ?"

चाचा—"किसीमें भी।"

वह—"ओ, तब तो इधर भी जाने सकता, उधर भी जाने सकता है"—कह कर चलता बना। चाचा भी जिधर उसने बताया था, एक तरफ चल पड़े। कुछ दूर आगे, एक कम चौड़ी और ज्यादा लम्बी चहारदीवारी से घिरे भूतहे मकान के समान एक बड़े भारी घर के सामने जा खड़े हुए। मालुम हुआ जैसे किसी बिगड़ी जमींदारी का हथियार हो। वैसा ही लम्बा-चौड़ा-ऊँचा। मरम्मत तलब उसके फाटक का सहारा लेकर—एक टूटी तिपाई पर एक मरियल नेपाली बैठा कभी ऊँघता कभी जम्हुआई लेता था। फाटक के ऊपर साइनबोर्ड लटक रही है—"...फिल्म कम्पनी", चाचा लापरवाही से जैसे ही फाटक के अन्दर घुसे कि पहरेदार बोला—जगह नहीं है।"

चाचा—"वाह, इतनी जगह है, इतनी बड़ी आलीशान इमारत इस बुढ़ापेमें भी जवानीकी यादमें अभी तक जिन्दा है फिरभी...।" इतने में ही, सामने के नीचेवाले कमरे से आवाज आयी 'आने दो।' चाचा वहाँ पहुँचे। देखा, शायद ऑफिस है। कुर्सी, टेबल, रेक्स, आलमारी, तिजोरी, कागज-पत्र आदि सभी चीजें मौजूद हैं। टेलीफोन भी है। दो अर्ध-वयस्क सज्जन दो कुरसियों पर विराजमान है। मगर, चाचा को अनुभव हुआ कि 'कह रहा

है आसमाँ, यह सब समाँ कुछ भी नहीं।' चाचा एक खाली कुरसीपर ज्यों ही बैठने लगे कि गिरते-गिरते बचे। वे लोग भी 'हाँ' 'हाँ' करने लगे। चाचा ने देखा कि वह तीन टाँग की कुरसी दीवार के सहारे केवल औफिस का डिसिपलिन पालन कर रही है बेचारी। खड़े ही खड़े पूछा—"यही फिल्म कम्पनी है? धत्तेरी की, बहुत शोर सुनते थे…खैर, यह तो बताइये, इस समय यहाँ क्या हो रहा है?' एक बोला—"अभी तो किछु नाहीं होता, पहले भी काम हुआ, बाद में भी किछु होगा।' दूसरा बोला—"आप क्या नाटकी के वास्ते आया है?" चाचा बोले "जी,आया तो था मैं बहुत कुछ के वास्ते, लेकिन हौसला पस्त हो गया।" पहला—"आप पंडित हाय? कोविता लिखना आउर इस्टोरी भी लिखने सकता?"

चाचा—"जी, कुछ कुछ!"

दूसरा—"कुछ हारज का बात नई हाय, आप इस्टोरी दूसरा दिन लाइये और हम बोलता एक फाइनेन्सियर भी ठीक कीजिये। सिरीफ बीस हजार रुपेया लगायेगा, बाकी चालीस हजार हाम लोग लगा देगा। तीन महीना में पिक्चर खलास। तीन-चार लाख में बिक जायेगा, ताकदीर मारने से जादा भी होने सकता। बस, आधा नोफा आप लोगों का, आधा हम लोग लेगा। आप ऐसा कर सकता?" चाचा समझ गये कि दिवालिया कार-खाना है। मन में सोच गये, कर्मचारी इतना गिर गया है कि

एक मेरे जैसे साधारण व्यक्ति से भी बिजिनेस ट्रिक खेलता है। प्रगट में बोले 'मैं इसीलिये तो आया ही था खैर, सामान वगैरह ता दिखाइये—कैसा है।"

दूसरा—"सामान साब है। केमरा, साउण्ड, लेबोरेटरी, सीनसीनरी, फरनीचर, ड्रेस, आइये देखिये।" तीनों उठ खड़े हुए। चाचा को घुमा-फिरा कर सभी चीजें दिखलाई गयीं, और उनके बारे में समझाने की चेष्टा भी की गयी। चाचा ने देखा, जैसे सभी चीजें किसी सिनो-म्युजियम में रखने लायक हैं, बरसों-से बेकार-बेतरतीब पड़ी हुई जिन्दगी के शेष दिन बुरी तरह बिता रही हैं। दीवारों के पलस्तर गिर रहे हैं, कहीं-कहीं वर्षा-पानी के चूते रहने से उनमें जैसे कोढ़ के दाग उभड़ आये हैं। मैदान में घास और जङ्गली झाड़-झंखाड़ उग आये हैं। कूड़े-कर्कटों का उठानेवाला भी शायद नहीं है।

लौटकर सब ऑफिस में आये पहले ने चाचा से पूछा "आप सिगरेट किम्बा बड़ी-उड़ी खाता है?"

चाचा—'खाता नहीं पीता हूँ।"

दूसरा—"कोन मार्के का पीता?" चाचा ने मन में समझा बच्चू के पास है नहीं, मुझी से जटना चाहते हैं। बोले—"सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध मार्के की बीड़ियाँ इस्तेमाल करता हूँ, किन्तु साथ में लेकर नहीं चलता।"

पहला—"अच्छा करता है। हम लोग भी इहाँ नेई पीता, स्टूडियो है न ? हुकुम नेई है।"

चाचा—"अच्छा तो जय माया की, इस समय मैं जाता हूँ। फिर आऊँगा।"

दूसरा—"आदर जैसा मैंने बोला, उपाय करके आइयेगा। हम आपको अलग भी कमीशन देगा।"

जरूर आऊँगा।" कहकर चाचा लौटे। गेट पर आकर पहरेदार से बोले—"तुमने ठीक ही कहा था भाई; तुम्हारी जगह के सिवा यहाँ और कोई भी जगह नहीं है—और उस पर तुम बिराज ही रहे हो, लाचार लौटा जाता हूँ।"

कहानी
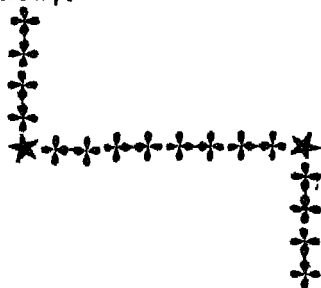
खो गया था

यह दिलचस्प कहानी लेखक द्वारा सम्पादित साप्ताहिक 'आलोक' [पटना] में बहुत पहले प्रकाशित हो चुकी है। अंतिम अंश में कुछ आवश्यक परिवर्तन कर दिया गया है। भगवान करें, पाठक-पाठिकाओं का भी इस तरह का कुछ खोया हुआ मिल जाय,............

(१)

प्रोफेसर रणधीर बड़े ही सज्जन और साहित्यिक स्वभाव के सहृदय-व्यक्ति हैं। अत्यन्त रसिक होने पर भी पक्के सदाचारी हैं। अभी तक अविवाहित हैं। तिर्हुत-कालेज में इतिहास के प्रोफेसर हैं। उससे जो समय बचता है, अधिकांश साहित्य और समाज की सेवा में लगाते हैं। नवीन ढंग की कविता में आपकी प्रतिभा विकासोन्मुखी है। कहाँनियाँ भी अच्छी लिखने लगे हैं। हाल ही में आपका एक सुन्दर उपन्यास 'ऋतुराज' बड़ी ख्याति पा चुका है। अब एक दूसरे की तैयारी कर रहे हैं—उसी में आजकल अधिक समय लगाते हैं। उन्हें आशा है—यह रचना भी अद्वितीय होगी। आप में यह एक विचित्रता है कि अप्रकाशित रचनाओं को किसी से भी नहीं दिखाते, और न उसके विषय में कुछ कहते ही हैं। प्रकाशित होने पर एकाएक लोग जब उनकी आश्चर्यजनक प्रशंसा करते हैं, तो उन्हें एक अपूर्व आनन्द आता है।

रणधीर एक अच्छे व्याख्याता, अभिनेता भी हैं। नगर और प्रान्त में आपकी अच्छी ख्याति है। चपरासी से लेकर प्रिन्सिपल तक आपको प्यार करते हैं—यही कारण है कि इस लोकप्रियता ने जहाँ इतने मित्र और सहानुभूति रखनेवाले बना छोड़े हैं, वहाँ मनुष्यता और सभ्यता की आड़ में छिपे-भयानक डंकवालों को भी, बुरी तरह-आकर्षित कर लिया है।

(२)

कालेज के प्रिन्सिपल श्री शारदारञ्जन बन्दोपाध्याय डोमी-साइल्ड बंगाली हैं। आपके पूर्वज बहुत दिनों से विहार में रहते आये हैं। ब्रह्मो होते हुए भी सनातन धर्म के आचार-विचार और व्रत-उत्सवों पर आपकी बड़ी श्रद्धा है। पुरातत्व और धार्मिक-विवेचना पर आपके लेख अंगरेजी, बंगला और हिन्दी पत्रिकाओं में प्रायः निकलते रहते हैं। आपकी पत्नी का देहान्त हो चुका है। लड़का बैरिष्ट्री करता है। पुत्री देवबाला उसी कालेज के एफ० ए० में पढ़ती है। बड़ी भली, भोली, और कुछ चंचल-सी, सुन्दरी बालिका है। प्रोफेसर रणधीर उसके हिन्दी-ट्यूटर हैं। फलस्वरूप हिन्दी की उसने साधारण-सी योग्यता प्राप्त कर ली है। कालेज की 'हिन्दी-सम्बर्द्धिनी समिति' की हस्तलिखित पत्रिका और उसकी बैठकों में, उसकी गद्य-पद्य रचनाएँ बड़े चाव से पढ़ी, और सुनी जाती हैं। इसका सारा श्रेय रणधीर को है। प्रिन्सिपल साहब को रणधीर पर पूरा विश्वास है, इसलिये दोनों के साथ-साथ घूमने फिरने का उनका खास आदेश है। किन्तु सवेरे-शाम देवबाला को पढ़ाने के लिये रणधीर को उसके घर पर ही आना पड़ता है। इन दोनों गुरु-शिष्या के बीच किसी तरह का कोई विशेष स्नेह या आकर्षण नहीं है, दोनों एक-दूसरे के प्रति पारस्परिक कर्तव्य के ध्यान से ही मिलते-जुलते हैं। परन्तु, रणधीर के सामाजिक-क्षेत्र की यशाग्नि

में अहर्निश झुलसनेवाले कुछ ईर्ष्यालु साथियों, और देवबाला की कई सहपाठिनों तथा सहपाठियों के भाव इन दोनों के प्रति अच्छे नहीं हैं। कुछ प्रोफेसर भी, इस साधारण और नवयुवक प्रोफेसर के सौभाग्य पर मन-ही-मन ईर्ष्या करते।

(३)

प्रिन्सिपल-निवास के पश्चिम एक छोटा सा नजरबाग़ है, उसी से ठीक सटा हुआ रणधीर का बंगला है। बंगले की पूरब ओर वाली खिड़की खोल देने से प्रिन्सिपल-निवास अच्छी तरह देखा जा सकता है; वरन् ऊँचे स्वर में वार्तालाप भी हो सकता है। रणधीर का वहाँ आना-जाना उत्तर पथ से है, बाग़ से रास्ता नहीं है।

एक रात बड़े जोरों का अन्धड़ आया-तूफ़ान का छोटा संस्करण। कितनी ही झोपड़ियाँ उजड़ गईं। वृक्षों की शाखाओं और पत्तों से वसुन्धरा की छाती भर गई। छोटे-छोटे पेड़-पौधे धराशायी हो गये। लोगों की वस्तुएँ तितर-बितर हो गईं। रणधीर जब तड़के उठकर अपने पढ़ने-लिखने के कमरे में गया, तो दोनों ओर की खुली खिड़कियाँ देखकर ही उसे चिन्ता हुई। कमरे का सारा कागज़ी सामान नीचे अस्तव्यस्त पड़ा था। समाचारपत्र, चिट्ठियाँ, लेटरपेपर आदि की बुरी गत हो रही थी। सब से बढ़ कर दुख यह देखकर हुआ कि उसके मनोयोग का आधुनिक केन्द्र, अनेक हिस्सों में इधर-उधर फैला

हुआ है। वह था उसका बड़ी साधना से लिखा जानेवाला उपन्यास। जल्दी-जल्दी सारे सामानों को ठीक कर वह उपन्यास के पन्ने मिलाने लगा। सब तो मिल गए, पर एक न मिला। बड़ी बेचैनी हुई। इसमें रणधीर ने मानव हृदय की सच्ची और जीती-जागती तस्वीर उतारी थी। उसकी सारी विद्वत्ता, विदग्धता सरसता और अभाव-आकांक्षा का निचोड़, कागज के उस क्षुद्र पृष्ठ पर लेखनी के रास्ते चू पड़ा था। व्याकुल होकर उसने दुबारा-तिबारा खोजा। आलमारी, टेबल, समाचारपत्रों के पृष्ठ तमाम छान डाले गये, पर वह हृदय-धन न मिला। बाग में भी बहुत दूर तक इधर-उधर देखा कहीं कोई कागज का टुकड़ा दिखलाई नहीं पड़ा। निराश हो, सिर पर हाथों को रख, कुर्सी पर धप् से बैठ गया। सोचा 'ऊँह, दूसरा लिख लूँगा, इतनी बेकली की क्या जरूरत?' फिर ध्यान आता 'नहीं नहीं, वैसा नहीं लिखा जा सकता, होगा तो उससे अच्छा या बुरा। ओह, बड़ा मोह आता है!' सिर उठा कर घड़ी की ओर देखा। 'अरे, साढ़े नौ? अभी तक शौच-स्नानादि से भी छुट्टी नहीं पाई। देवबाला के ट्यूशन का समय भी निकल गया। कालेज जाने का समय हो रहा है...।'

एकाएक शरारत भरी मुस्कुराहट और जिज्ञासा भरी दृष्टि से देवबाला ने कमरे में प्रवेश किया। रणधीर ने उसका ऐसा भाव कभी न देखा था। कुछ समझा नहीं। सोचा, देरी की वजह चली

आई है।···मगर आज तक तो कभी ऐसा न हुआ ? इस क्षणिक मूक—दृश्य ने जैसे देववाला के हृदय स्थित किसी शंका को गिज़ा पहुँचा दी हो; उसने तनिक सर हिला कर इसका प्रदर्शन किया। रणधीर को क्या मालूम ? उसने कहा—"देवा ! आज कुछ जरूरी कार्यवश न आ सका; शाम को दोनों समय का पूरा हो जाएगा। नहीं तो···देखता हूँ, तुम पुस्तक आदि भी न लाई यहीं कुछ पढ़ा देता। अच्छा जब तक कोई मासिक पत्र देखो, मैं शीघ्र ही स्नान आदि से छुट्टी पा लूँ।" फिर वही मूक-मुस्कुराहट !!···जिज्ञासा भरी चितवन !!! रणधीर ने जैसे कुछ समझा नहीं, कहा, 'आओ बैठो न, खड़ी क्यों हो ?

"नहीं, यों ही आई थी आपको देखने। अब जाती हूँ, शाम को आइएगा न ?"

'जरूर।'

(४)

शामको रणधीर जब पढ़ाने गया, तो सदा से कुछ विपरीतता का आभास पाया। बात में, व्यवहार में, अदब में, पढ़ाई में कुछ-कुछ अनोखापन-सा अनुभव हुआ। समय पूरा हो जाने पर भी, देववाला कुछ और पढ़ने की इच्छा जताने, और अनावश्यक बातें बनाने लगी। रणधीर ने आज की नवीनताओं पर कुछ ध्यान न दिया। समझा, बालिका ही तो है; अकारण चप-

लता करना उसका स्वभाव है। थोड़ी देर और पढ़ा कर चलने को तैयार हुआ। देवबाला ने कहा 'आप……आप शिक्षा-मार्ग का पथ दर्शा कर ही ठहर जाना चाहते हैं, आगे नहीं बढ़ते। मैं बढ़ना चाहती हूँ…।'

रणधीर ने सहज स्वभाव से कहा "बढ़ो न, जितना चाहो बढ़ो। मैं शक्ति भर तुम्हें बढ़ाने को तैयार हूं।"

देवबाला ने, उनकी ओर न जाने किस भाव से थोड़ी देर तक देख कर कहा 'तो फिर……? अच्छा जाइए, सवेरे आइयेगा न ?'

"क्यों ? आऊँगा क्यों नहीं ?" कहता हुआ रणधीर डेरे चला।

इसी प्रकार रणधीर को नित्य कुछ-न-कुछ नवीनताओं का अनुभव होने लगा। एक दिन ऐसा विदित हुआ कि वह कुछ कहना चाहती है, किन्तु छिपा रही है; और ऐसा सांकेतिक भाव दर्शा रही है, जिससे रणधीर ही को कुछ कहना पड़े। वह अभी तक तो अनजान था, परन्तु अब जैसे समझदारी का तकाज़ा आरम्भ हुआ। सोचा, 'कहीं यह मुझसे प्रेम तो नहीं करने लगी है……।' सारे लक्षणों को मिलाकर देखा, ठीक यही बात है। "तो……तो, इसका आरम्भ कैसे हुआ ?……मैंने तो स्वप्न में भी ऐसी कल्पना नहीं की, हाव-भाव दर्शाना तो दूर की बात है। तो क्या स्वयं ही उसके मन में यह बात उठी ? मुझमें

ऐसा कोई आकर्षण भी तो नहीं है !" परिणाम यह हुआ कि अब यह भी संकोच करने लगा। इसकी निर्दोष आँखें जो निर्विकार भाव से अपना कर्तव्य पालन कर रही थीं, अब सामना करने में जी चुराने लगीं। इससे उधर का साहस बढ़ चला। अब अधिकांश समय रणधीर के साथ ही बिताना चाहती है, और रणधीर जैसे भागना चाहता है। पिता से आज्ञा लेकर अब वह रणधीर के बँगले पर ही पढ़ने के लिये आने-जाने लगी है। इस अत्यन्त बढ़ती हुई घनिष्ठता को देखकर रुकावत और ईर्ष्या का बाजार गर्म हो उठा। लोगों की मनोवृत्ति प्रतिकार के लिये उत्तेजित हो गई। सब ताक में रहने लगे।

(५)

एक दिन शाम की पढ़ाई समाप्त कर देवबाला अकारण ही इधर-उधर की बातें करके जैसे भागते हुए रणधीर के मन को बरबस रोक रही है। आज जैसे उसने कुछ ठान-सी ली है। एकाएक पूछा—'मास्टर साहब, प्रेम किसे कहते हैं ?'

रण०—(कुछ सोच कर) 'प्रेम तो किसी के प्रति लालसारहित आकर्षण को कहते हैं।'

देव०—'लालसारहित आकर्षण ?'

रण०—'हाँ'

देव०—'यह सम्भव है ?'

रण—'सम्भव नहीं है तो पुस्तकों में वर्णन क्यों है ? लोग करते क्यों हैं ?'

देव०—(कुछ ठहर कर) 'आप यह सैद्धान्तिक रूप से कहते हैं या व्यावहारिक ?'

रण०—'......दोनों'

देव०—[मुस्कुराने की चेष्टा करती हुई] 'दोनों किस प्रकार ? आपने इसकी व्यावहारिकता का स्वयं अनुभव किया है ?'

रण०—'मैंने नहीं किया है, करनेवाले अनुभवियों के विचार तो पढ़े हैं।—सुने हैं।'

देव०—'स्वय नहीं किया है'

रण०—'नहीं'

देव०—'कभी चेष्टा की है ?'

रण०—'नहीं, कभी नहीं......मगर देवा, आज तू ऐसे प्रश्न क्यों कर रही है ? आज तो......'

रणधीर की ओर पकटक देखती हुई—एकाएक देवबाला ने उत्तेजित स्वर में कहा—

'क्यों प्रश्न कर रही हूँ ? ...... निठुर ! ......' और फिर दोनों हाथों से सर थाम, फफक फफक कर रो उठी। बेचारे रणधीर को कुछ न सूझा कि क्या करें। इस अप्रत्याशित घटना से वह हक्का-बक्का सा हो, कुछ देर तक तो बैठा रहा; फिर आश्वासन देने के लिये डरते-डरते उसके सर पर हाथों को

फेरना आरम्भ किया। परन्तु देवा का रोना घटने के बदले बढ़ता ही गया। इतने में एक और घटना हो गई, जिसकी और भी आशा नहीं थी। एकाएक प्रिन्सिपल साहब कई प्रोफेसरों, विद्यार्थी-विद्यार्थिनों, और कुछ बाहरी मनुष्यों के साथ आ धमके; और अपशब्द कहते हुए एक ऐसी लात देवबाला को लगाई कि वह बेचारी औंधे मुँह जमीन पर गिर पड़ी—और बेहोश हो गई। रणधीरको ऐसे-ऐसे अपशब्द कहे गये, ऐसी लानत-मलामत की गई कि वह पागल की तरह चेष्टाएँ करता हुआ रो पड़ा। फिर एकाएक बाहर की ओर भागा। लोगों ने पकड़ लिया। इसके बाद प्रिंसिपल साहब बेहोश देवबाला को विद्यार्थिनिओं की सहायता से उठा कर निवास की ओर चले। साथ में पागल कैदी-रणधीर और अन्य लोग भी।

\+ \+ \+

थोड़ी देर की चेष्टाओं के बाद देवबाला की आँखें खुलीं। उसने चारों ओर देखा। रणधीर एक ओर उदंड अपराधी की भाँति निश्चेष्ट बैठा था। प्रिंसिपल साहब ने अत्यन्त कोमल स्वर में पूछा "देवा, तू इस नराधम के फन्दे में कैसे आई?"

वह थोड़ी देर तक पिता, फिर रणधीर की ओर देखकर बोली "पिताजी, पहले इसी ने मेरे पास प्रेम-पत्र भेजा, मैं अनजान इस पर रीझ बैठी......फिर-फिर इसने अनभिज्ञता जता कर मुझे अत्यन्त त्रास दिया, ओह!"

रणधीर—"ईश्वर तू साक्षी है। क्या मैं उस पत्र को देख सकता हूँ ?"

देवबाला—"पिता, इस निठुर का साहस तो देखो ! अस्वीकार करने का क्या ढंग निकाला है । अच्छा मैं दिखाती हूँ।" इतना कह कर पढ़ने-लिखने की टेबुल के दराज में से एक मोड़ा हुआ लिखित पत्र निकाल कर उसने रणधीर के मुँह पर फेंक दिया।

पत्र देखते ही रणधीर की चेष्टायें बदल गईं। वह एकाएक उठ खड़ा हुआ और आनन्दातिरेक से विह्वल होकर बोल उठा 'देवा, यह तुझे मिला क्योंकर ?'

देव०—जिस दिन, आप पढ़ाने नहीं आए उसी दिन सबेरे टेबुल पर पड़ा देखा, उठाकर पढ़ा। मैं आपके अक्षर पहचानती थी। समझ गई, आप ही ने लिखा है—और मेरे ही पास लिखा है। जब आप उस दिन नहीं आए, तो पूरा विश्वास हो गया कि आपको संकोच हो रहा होगा। तो क्या यह पत्र···?"

रणधीर—"पगली, यह प्रेम-पत्र तो अवश्य है, जिसे अप्रकाशित उपन्यास के प्रेमी ने अपनी प्रेमिका को लिखा है। देखती नहीं, कोने में नत्थी का चिन्ह ! ओह, यह सारा अन्धेर उस दिन के अन्धड़ का है, उसी ने मेरे कमरे से उड़ा कर यहाँ पहुँचाया।"

अब तो असलियत समझते किसी को देर न लगी। मिश्रित-

पल साहब और अन्य लोगों को बड़ा पछतावा होने लगा। माली ने भी स्वीकार किया, कि जरूरी कागज समझ कर उसने ही टेबुल पर रख दिया था।

(६)

कई दिन बीत गये। बात आई-गई हो गई। लोग इस घटना को एक प्रकार भूल-से गये। किन्तु रणधीर भूलने की बजाय एक विचित्र मानसिक उलझन में फँस चला। कालेज में या और कहीं भी, देवबाला की ओर देखने में न जाने क्यों संकोच अनुभव करने लगा। उधर, देवा के स्वभाव में भी परिवर्तन। हर दम जैसे लज्जा में गड़ी सी रहती—चिंताशील। पहली सी चपलता, नटखटी, बच्चों की सी हँसी, न जाने कहाँ खो गई। घर पर कुछ उदास, कुछ सहमी-सी तो रहती ही है, कालेज में भी यही हाल है। वहाँ की साहित्य-कला-गोष्ठियों में बुलबुल ने चहकना छोड़ दिया है। जहाँ तक होता है, रणधीर से दूर ही रहने की चेष्टा करती—है आँखें चुराती है।

एक दिन प्रिंसिपल साहब का ध्यान एकाएक इस ओर आकर्षित हुआ। बुलाकर पूछा—

'क्यों देवू, तबीयत तो ठीक है न? अजीब सूरत बनाए रहती है—आजकल! बात क्या है?'

देव०—'नहीं पिताजी, कुछ ऐसी बात तो नहीं है। परीक्षा सर पर है न—'

प्रि०—'ओ समझा। इसीसे, जैसे तू घर में रहती ही नहीं, ऐसा लगता है। वह हुल्लड़बाजी, धमाचौकड़ी सब बन्द है। (हँसकर) कभी कभी कुछ शरारत कर लिया कर, इसके बिना घर सूना-सूना लगता है। अच्छा, रणधीर यहीं पढ़ाने आता है या तू ही उसके घर जाती है ?'

देव०—'जी······'

प्रि०—'क्यों ? चुप क्यों हो गई ?'

देव०—'मैं उनसे नहीं पढ़ती।'

प्रि०—'अरे ! यह क्यों ?'

देवा ने फिर चुप्पी साध ली।

प्रिंसिपल ने समझा, 'अपराध की लज्जा बच्ची को अभी तक खाए जा रही है' प्रकट में मुस्कुराकर बोले—'अरे तूने जान-बूझ कर थोड़े ही कुछ किया है ? भूल-भ्रम सभी से होते हैं। अच्छा, क्या वह भी नहीं आता ?' देवबाला बोली नहीं, केवल सिर हिलाकर 'नहीं' का संकेत किया।

प्रिंसिपल बाले—'उसके न आने की कौन सी बात थी ? गँवार कहीं का ! खैर, यहीं बुलाता हूँ उसे, माफी माँग लेना। आखिर तुम्हारा गुरु है न ! अरे ओ जीतू—जीतू···!'

जीतू बाग का माली है, घर के छोटे-मोटे फुटकर काम भी कर देता है। सुनते ही 'जी सरकार' कहता दौड़ा आया। प्रिंसिपल साहब ने आज्ञा दी—'जा झटपट रणधीर जी को बुला ला!'

जीतू जैसे ही जाने लगा कि देवा ने झट से रोक दिया।

'नहीं जीतू, मत जाना। मैं ही संध्या को उनके यहाँ मिल आऊँगी। अभी जरूरत ही क्या है ?'

प्रिंसिपल साहब ने सोचा, जब कई दिनों से आपस में संकोच की दीवार नहीं ढही तो फिर इनमें से कोई भी स्वयं साहस नहीं करेगा। जीतू से बोले—

'नहीं रे, जा तू प्रोफेसर जी को बुला ला। कहना मैं बुला रहा हूँ।' जीतू के जाते ही लगे बेटी को समझाने। "सच्चे मन से अपराध के लिये पछतावा करने से जी का बोझ हलका हो जाता है। कितना नेक है बेचारा। इतना अपमान हुआ, किन्तु शान्त बना रहा। जा, कपड़े बदल कर अपने कमरे में आ, वह आता ही होगा।" देवा चुपचाप चली गई। प्रिंसिपल जैसे ही अपने रूम से बाहर निकले कि जीतू लपका हुआ आकर बोला 'हजूर, जैसे ही मैं पहुँचा, वह ताँगे पर सवार होकर स्टेशन की तरफ जा रहे थे। बिस्तर-विस्तर भी साथ में है। कह रहे थे, घर जा रहा हूँ। यह चिट्ठी दी है।' प्रिंसिपल ने पढ़ कर देखा—क्षमा प्रार्थना के साथ इस्तीफा है, कालेज की प्रोफेसरी से। कुछ सोच कर जीतू से कहा 'दयाल सिंह को कह दे कार ले आवे—फौरन।'

कार आई, सवारी चढ़ाकर स्टेशन की ओर हवा हो गई। स्टेशन-कम्पाउन्ड में जैसे ही घुसी, सामने रणधीर तांगे से उतर

रहा था। पास ही कार रुकवा कर प्रिंसिपल साहब उतरे। उन्हें देखते ही रणधीर सकपका गया। प्रणाम के लिये हाथ उठाकर भी, गुम-सुम खड़ा रहा—दूसरी तरफ देखता हुआ।

'कहाँ जा रहे हो?'

'घर'

'क्यों?'

चुप।

'चलो, लौट चलो। गुरु-चेलिन आपस में समझौता कर लो। देवा माफी चाहती है। देखो, भूल-भ्रम मनुष्य से होते ही हैं। माना कि तुम्हारा अपमान हुआ। मुझे भारी दुख है, क्योंकि तुम्हें भी मैं पुत्र जैसा ही समझता आया हूँ।' रणधीर घबरा कर बोला—

'नहीं नहीं सर, मुझे जाने दीजिये।'

प्रि०—'माना कि आत्म-अपमान का अभिमान स्वाभाविक है, पर उसका समाधान हो जाने पर जिद पकड़ लेना ठीक नहीं। और...'

रणधीर बीच ही में बात काट कर बोला—

'नहीं नहीं, सर। यह बात नहीं है।'

प्रि०—'अब लौट चलो। देवा को बड़ा पछतावा है। इसी सोच में वह हरदम उदास रहती है। तुमसे माफी माँग लेगी तो उसका जी हलका हो जायेगा। देखते नहीं हो, आजकल

कैसी होती जा रही है ? चलो, बचपना रहने दो ।'

अनिच्छापूर्वक यंत्रचालित पुतले की भाँति रणधीर अपने प्रिंसिपल साहब के साथ लौटा ।

कार से उतर कर दोनों बैठके में आए । रणधीर को बैठने के लिये कह कर प्रिंसिपल देवा के कमरे की तरफ चले ।

उसके द्वार के कुछ इधर ही जैसे पहुँचे, देवा को आवेश के साथ किसी से बातें करते सुना । जरा रुक गये । वह देवा की अभिन्न सखी राधा थी । शायद वार्तालाप का सिलसिला देर से चल रहा था । जितना अंश सुना, इनके लिये काफी था । देवा सखी से कह रही थी—'जैसे ही वह उपन्यास वाली चिट्ठी तूफान में उड़कर मिली, बिना अधिक सोच-विचार किए मैं मन ही-मन उन्हें आत्म-समर्पण कर बैठी । रहस्योद्घाटन के समय तक, हरदम मैं इसी भाव में विभोर रही । और अब तो .....।'

(७)

प्रिंसिपल साहब की समझ में अब सब कुछ आ गया । पहले दोनों का बर्ताव कुछ और ही समझ रहे थे । अब उनकी आँखें खुल गईं । फिर तो जो कुछ किया जा सकता था, उन्होंने उदारता-पूर्वक किया । कई दिनों तक खूब चहल-पहल रही । सारा काम सादगी और सुन्दरता से सम्पन्न हुआ ।

स्वर्ग में सायरन

[इस नाटय-रूपक जिसे [इन दिनों 'एकांकी नाटक' कहा जाता हैं] का तर्ज-- बर्या एकदम नया नहीं है। फिर भी सुप्रसिद्ध (पूज्य श्री वाबूराव विष्णु पराड़कर के द्वारा सम्पादित) संसार के होली-विशेषांक [६-३-४४] में प्रकाशित होने के बाद, इस ढंग की कई चीजें छपी हैं। पाठक तुलना करेंगे।

युद्धकाल में, शत्रु के बमबाजों से जनता को सावधान करने के लिये सायरन बजती है। स्वर्ग में इसका बजना आश्चर्यजनक ही नहीं, अस्वाभविक भी है। किन्तु इसका तत्त्वविवेचन उतना ही सत्य-स्वाभाविक और मनोरंजक है। पाठक पढ़ना आरम्भ करते ही समझ लें—सायरन सुन रहे हैं। इसके बाद—]

प्रथम दृश्य

[स्थान—स्वर्गसभा, विष्णु, इन्द्र, बृहस्पति, कुबेर, वरुण, चित्रगुप्त यथास्थान बैठे हैं। उर्वशी नृत्य कर रही है। वाद्यकला रंग पर है। एकाएक सायरन— खतरे का भोंपा बज उठता है। नृत्यवाद्य रुक जाते हैं। सब चकित—आशंका से एक-दूसरे को देखने लगते हैं। इसी समय यमराज शीघ्रतापूर्वक एक स्वयं-सेवक के साथ प्रवेश करते हैं। सायरन की ध्वनि पर ध्यान जाते ही, स्वयं-सेवक साश्चर्य बोल उठता है]

स्वयं०—अरे! यहाँ भी सायरन! भागिये, भागिये आप लोग; और ऐसी जगह छिपिये जहाँ बम असर न कर सके।

इन्द्र—बम?

स्वयं०—हाँ महाराज, वह आपके वज्र का भी गुरु है। जल्दी भागिये, क्लियर हो जाने के बाद फिर बहस-विचार कीजियेगा।

कुबेर—क्लि-य-र हो जाने के बाद? यह क्लियर......

स्वयं०—बस रह गये न सीधे देवता! अरे महाराज, क्लियर का अर्थ है—भय दूर हो जाने की घण्टी। जिस प्रकार यह भय का भोंपा बज रहा है, उसी प्रकार भय दूर हो जाने का भी बजता है।

[सायरन की ध्वनि बन्द हो जाती है]

वरुण—यह तो बन्द हो गया।

स्वयं०—इससे क्या, जब तक क्लियर की घण्टी नहीं बजती तब तक भय बना रहता है।

विष्णु—धर्मराज जी; यह कौन है ?

यम—यह हैं......

चित्रगुप्त—प्रसिद्धपुर के स्वेच्छासेवक। इनकी आकस्मिक मृत्यु एक महाभयानक विस्फोटक आग्नेय-अस्त्र द्वारा होने-वाली थी।

यम—हाँ महाराज, सचमुच वह महाभयंकर-प्रलयंकर अस्त्र है। मैं तनिक सा बच गया। नहीं तो, जो सबके प्राण हरण करता है, उसके प्राण स्वयं हरण हो जाते महाराज।

स्वयं०—उसी अस्त्र का नाम बम है। अरे आप लोग छिपते क्यों नहीं ?

विष्णु—बम तो हमारे शंकर जी के नाम के पहले लगाकर बमशंकर के नाम से भक्तजन उनकी आराधना करते हैं।

स्वयं०—अजी भगवान् महाशय, शंकर जी में जो शक्ति थी, स्वतन्त्र राष्ट्रों के वैज्ञानिकों ने उसमें से 'बम' निकाल लिया, और केवल शंकर भक्तों के लिये छोड़ दिया है। खैर, अभी बहस छोड़िये और कहीं जल्द छिप जाइये। संसार बनता-बिगड़ता ही रहता है, मगर आप ही लोग अगर बमदेवता के शिकार हो गये, तो बस कहानी समाप्त। प्रसिद्धपुर में सायरन बजने पर आप ही जैसे हुज्जतियों को समझा रहा था कि एकाएक शत्रु के

यमबाज आये, और......! अरे महराज जल्दी कीजिये! हम सांसारिकों पर आप लोग खूब हुक्म चलाते आ रहे हैं, इस समय कम-से-कम अपनी भलाई के विचार से ही सही, मेरा हुक्म मान जाइये।

इन्द्र—बृहस्पति जी, आप देवलोक की बुद्धि हैं। कहिये क्या उचित है?

बृ०—अभी तो इस सेवा सिपाही की बात मान ही लेनी चाहिये; तब तक मैं विचार भी कर लूँगा कि क्या रहस्य है।

इन्द्र—अच्छा, तो अभी हम लोग कल्पवृक्ष के नीचे आश्रय लें। और जैसा कि (मुस्कुराकर) मनुष्य महाशय ने कहा है भय दूर होने की ध्वनि होते ही पुनः यहाँ एकत्र हों। मेरी राय है (विष्णु से) भगवान्, कि उस समय कुछ मर्त्यलोकवासी भी जो स्वर्गलोक में निवास कर रहे हैं, परामर्श में सम्मिलित किये जायँ।

विष्णु—ऐसे कई महामानव नर्क में भी हैं; इस असाधारण अधिवेशन में उन्हें भी बुला लिया जाय।

स्वय०—अरे दुहाई है आप लोगों की, जल्दी कीजिये। सम्मेलन होता रहेगा।

[सब उठकर जाते हैं]

द्वितीय दृश्य

[स्थान—कल्पवृक्ष की छाँह। उपरोक्त सभी महाशय उपस्थित हैं। क्लियर की सायरन बजती है]

स्वयंसेवक—बस, खतरा टल गया। अब आप लोग निश्चिन्त होकर बहस-विवाद कर सकते हैं। चलिए सभा-भवन में।

इन्द्र—यमराजजी, जिनके नाम निश्चित हुए हैं, उन्हें सूचना दे दीजिये, दो घंटे बाद सभा-भवन में आ जायँ। तब तक हम लोग विश्राम कर लें।

यम—चित्रगुप्तजी, (स्वयंसेवक की ओर संकेत करके) इन्हें कौन सा स्थान दिया जाय ?

चित्र०—कर्मानुसार तो नर्क मिलना चाहिए।

विष्णु—परन्तु, इनकी मृत्यु परोपकार में हुई है, अतएव इन्हें स्वर्ग मिले।

इन्द्र—यमरामजी, इनके लिये स्वर्ग में ही व्यवस्था कीजिए।

स्वयं०—मगर महाराज, नर्क में मेरे बहुत से साथी मेर प्रतीक्षा कर रहे होंगे।

विष्णु—(मुस्कुराकर) उन्हें कह दिया जायगा कि अगले जन्म में आप ही की भाँति मृत्यु प्राप्त कर स्वर्ग में आपसे साक्षात् करें।

[सब हँसते हुए जाते हैं]

तृतीय दृश्य

[स्थान—वही, तथा कथित सम्मेलन में उपरोक्त देवताओं के अतिरिक्त कुछ अन्य व्यक्ति उपस्थित हैं।]

इन्द्र—बृहस्पतिजी, अपने विचार प्रगट कीजिए।

बृह०—महानुभावों, सायरन-भय का भोंपा—इन दिनों मर्त्य-लोक में कहीं न कहीं नित्य बज रहा है। क्योंकि सारा विश्व इस नाशकारी युद्ध में त्रस्त है। एक पक्ष दूसरे पक्ष पर विमानों द्वारा महाघातक आग्नेय—जिसे बम कहते हैं, बरसाता है। सायरन उन्हीं आक्रमणकारी विमानों के आने की चेतावनी है।

वरुण—किन्तु हमारे देव-लोक को तो ऐसे आक्रमणों का भय नहीं। न हमारा शत्रु है, और न हमारी भौगोलिक स्थिति ही ऐसी है। तो भी आज की यह भयंकर शंख ध्वनि—

बृह०—प्रतिध्वनि है विश्व के सायरन की। परन्तु वास्तव में यह देवलोक के लिए सायरन ही है!

कुबेर—अर्थात् हमलोगों के लिए भी भय का कारण है?

बृह०—हाँ, निश्चय!

वरुण—किस प्रकार?

बृह०—यदि मर्त्य-लोक न रहा, विश्वविध्वंस हो गया, तो लोक-परलोक की क्या उपयोगिता? यह लोक तो एक प्रकार मर्त्यलोक-वासियों का उपनिवेश है। हम कुछ कर्मचारियों को छोड़कर शेष सभी स्वर्ग-निवासी विश्व-प्रवासी ही तो हैं।

यम—किन्तु पहले भी तो कई बार प्रलय हो चुके हैं, जिनसे विश्व का नाश होता रहा है।

बृह०—वे ईश्वरेच्छा-प्रेरित प्राकृतिक प्रलय थे। उनमें स्वर्ग, मर्त्य और पाताल की समाप्ति हो गयी थी। किंतु आजकल तो

अप्राकृतिक प्रलय हो रहा है। यह मनुष्यों की—जातियों की महत्वाकांक्षाओं का संघर्ष है।

स्वयं—तब तो इसमें जो जूझते या सहायता करते होंगे, उन्हें नर्कवास होगा ?

इन्द्र—नहीं, जो स्वदेश की भलाई समझ कर अपने शासन-सञ्चालक की आज्ञा से सहयोग देते होंगे, उन्हें तो स्वर्ग प्राप्त होगा।

स्वयं—अच्छा, अभी-अभी जो भारत, विशेषकर बंगाल में भूख से मरे हैं या मर रहे हैं उनको ?

इन्द्र—माँ की गोद की तरह उन्हें स्वर्ग में सबसे उत्तम स्थान प्राप्त होगा।

स्वयं—और जो कर्मचारी या व्यापारी इस मृत्युमहोत्सव के दायी हैं ?

भूख से मरे हैं या मर रहे हैं उनको ?

इन्द्र—अकारण मृत्यु का दायित्व जिन पर है, उनके लिए नर्क का विधान सर्वविदित है।

स्वयं—मगर उनमें से अनेक भूखों के लिए दान अथवा इन्तजाम कर रहे हैं ?

इन्द्र—वे अपने महापाप का लघु-प्रायश्चित्त कर रहे हैं। हाँ, जो निःस्वार्थ-सहायता-कार्य में संलग्न हैं, यदि वे महापापी भी होंगे तो उन्हें स्वर्ग पाने का अधिकार है।

विष्णु—(स्वयंसेवक से) और कुछ आपको पूछना है।

स्वयं—जी...नहीं।

विष्णु—बृहस्पतिजी, अब आप अपना वक्तव्य पूर्ण कीजिए।

बृ०—मैं पूर्ण कर चुका। केवल निवेदन करना है कि आज जिस प्रकार सारा विश्व विविध वेदनाओं से व्यथित होकर तिल-तिल नाश को प्राप्त हो रहा है, उसकी प्रतिक्रिया देवलोक में भी हो सकती है इसी को चेतावनी स्वरूप यहाँ भी सायरन बजा है। अतएव पूर्ण विचारों के साथ इसके निवारण की चेष्टा करनी चाहिए।

विष्णु—आप सज्जनों को गुरु बृहस्पति ने सारी बातों को भलीभाँति समझा दिया है। इस विषय पर अब अपने-अपने विचार प्रगट कीजिए। सर्वप्रथम महाराजाधिराज विक्रमादित्य वक्तव्य दें।

विक्रमादित्य—मैं संक्षेप में ही निवेदन करूँगा। भिन्न-भिन्न संस्कृतियों, भाषाओं, जातियों तथा ऋतुओं के रहते हुए भी भौगोलिक-सीमा-शृंखला के कारण विश्व-विख्यात भारतवर्ष में एकदेशीयता—राष्ट्रीय संस्कृति अवश्य है। इसी आदर्श की रक्षा वैदिक-काल से होती चली आ रही है। मेरे पूर्व के ऐतिहासिक महापुरुषों ने भी इसी ध्येय की रक्षा में ख्याति प्राप्त की। परन्तु जब-जब विदेशियों द्वारा राष्ट्रीय एकता छिन्न-भिन्न हुई, भारत की सारी सुव्यवस्था बिखर गयी। प्रान्तीयता, जातीयता, साम्प्रदायिकता आदि—कलह से गृह-युद्ध मचते रहे। प्रायः इसके दो

कारण प्रधान होते हैं। एक तो सीमाप्रान्तों के हड़पने और वहू लूट-मार मचाने की विदेशियों की कुचेष्टा और दूसरा आयात-निर्यात होनेवाले पदार्थों के कर-सम्बन्धी अनुचित लाभ उठाने की चेष्टा। हमारे जल, स्थल तथा पहाड़ी मार्गों पर सदैव उनके द्वारा आतंक उपस्थित होते रहते थे। इसी के निवारण के लिये उन विदेशी शासकों से ही नहीं, उनके द्वारा बहकाये गये अपने प्रान्तीय शासकों से भी हमें युद्ध करना पड़ा, और लुटेरे दूर खदेड़े जा सके। जिन्होंने सन्धि चाही, उन्हें मित्र बनाया। जो बसना चाहते थे, उन्हें सादर स्थान दिया गया। ऐसा लगता है कि मेरे शासन के समय में जो युद्ध के कारण थे, आज के विश्व-युद्ध का कारण भी प्रायः वैसा ही कुछ है। और जब तक राष्ट्रों में लुटेरी प्रवृत्तियाँ रहेंगी, तब तक संसार में शान्ति न होगी।

विष्णु—शाहंशाह अकबर कुछ कहें।

अकबर—मैं अपने बुजुर्ग और हिन्दुस्तानी कौमियत के सबसे बड़े तवारिखी रहनुमा महाराजा विक्रमादित्यजी की बातों का ताईद करता हूँ। हिन्दुस्तान की हुकूमत में मेरा भी उसूल यही रहा। गो कि मेरे हम-मजहब सलाहकारों ने मेरे दिल में बार-बार यही खयाल पैदा करने की कोशिश की कि हम मुसलमान गैर-मजहब और गैर मुल्क के हैं। हमें उन्हीं की बेहतरी की खातिर हिन्दुस्तान पर हुकूमत करनी है। मगर मैंने मादरे-हिन्द को ही अपना वतन समझकर उसकी कौमियत को मजबूत करने के लिये

सभी कुछ किया। लड़ाइयाँ लड़ीं, सुलह की, दीन-ए-इलाही मजहब चलाया, हिन्दू-मुस्लिम शादी को तरजीह दी। मगर अफसोस, मेरे बाद यह कड़ी ढीली होती-होती एकदम टूट गयी, और देश गुलाम हो गया। यह एक अजीब राज है कि यह दुनियाई-बहिश्त जिस किसी ग़ैर मुल्कवालों के कब्जे में रहा, दूसरे ग़ैर-मुल्कवालों ने भी उसे चैन न लेने दिया। (हरे-हरे की आवाज) हिन्दू-बादशाह के पहले की तवारीख मेरे सामने नहीं है कि शक, हूण और दूसरे विदेशियों ने—हिन्दुस्तान पर कब्जा जमाने के लिये कितनी खून की नदियां बहायीं। अपने हम-मजहबों के बारे में इतना जानता हूँ कि पठान जब यहाँ बादशाह हुए, तो उनके मुखतलिफ फिरकों में भी मार-काट मचती रही। मुगलों के जीतने पर उनमें भी खूंरेजियाँ मचीं। भाई-भाई का, बेटा बाप का दुश्मन बन गया। इसके बाद पोर्तुगीज, फ्रांसीसी, डच किस्मत आजमाते रहे। आज अंग्रेजों का सितारा बुलन्दी पर है, कल की बात खुदा जाने। कौन कह सकता है कि इन दिनों जो दुनिया में कयामत बरपा किया जा रहा है हिन्दुस्तान की गुलामी भी उसकी एक वजह नहीं है ?

विष्णु—अब गोस्वामी तुलसीदासजी कुछ निवेदन करें।

तुलसी—(शांत भाव से उठकर)

जे अधर्म बस युद्ध कराहीं।

नरकहुँ महँ तिनी ठौर न पाहीं॥

जे परजा पीड़क अभिमानी।
करत अनेक स्वार्थ मनमानी॥
रावण सरिस वीर विज्ञानी।
ताकी सुनियत करुण कहानी॥
तिन सासक गति कबहुँ न पाई।
जनम जनम के पुन्य नसाई॥

विष्णु—कार्लमार्क्स साहब!

यम—महाराज, उन्होंने और लेनिनजी ने कहा कि पूँजी-पतियों के खुदा और देवताओं के दरबार में हम न आयेंगे। साथ ही यह भी कि आजकल की दुनियावी लड़ाई पूँजीपतियों की ही चलायी हुई है और धर्म भगवान-स्वर्ग का ढकोसला उसमें मदद करता है। इसलिये अच्छा है कि यहाँ भी 'बम्बार्ड' हो, जिससे स्वर्ग-नर्क का नाटक ही खत्म हो जाये।

विष्णु—(मुस्कराकर) हूँ! अच्छा-राष्ट्रपति विलसन महोदय—

विलसन—मेन पाइन्ट्स आव वार पर किंग विक्रमा और अकबर द ग्रेटने शॉर्ट में कह दिया है। मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूँ कि लास्ट ग्रेट वार खत्म कराने में मेरा बड़ा हाथ रहा। लेकिन अफसोस है कि मेरी शर्तों पर जिस लीग-आव-नेशन्स को कायम किया गया, इम्पिरियलिज्म के हथकंडों ने उसे बेकार कर दिया; दुनिया में फिर वही रवैया आ धमका। और फिर यह नया वार छिड़ा है, अब भी मेरा दावा है कि मेरी शर्तों के

डिफेक्ट दूर करके उनके जरिये लड़ाई की आग हमेशा के लिए बुझायी जा सकती है।

विष्णु—देवी एनीबेसेन्ट

एनीबेसेन्ट—मैं अपने जातिभाइयों से यह कहना चाहती हूँ कि अधिक नहीं तो कम से कम 'होमरूल' भी इस समय भारतीयों को दे दें तो वे निश्चय युद्ध में विजयी हो सकते हैं। दूसरी बात यह कहना चाहती हूँ कि पहचान में भूल भले ही हो, किन्तु 'पूर्व के तारे' का प्रगट होना ध्रुव है।

विष्णु—कबीरदासजी कुछ कहें!

कबीर—बन्दे, तू ही बैरी अपना।
लोभ, स्वार्थ मन कपट भरा है,
ऊपर जग हित रटना॥
धर्म, सचाई की दे दुहाई,
पर को—निज को ठगना॥
एक पिता के सब जाये हैं,
फिर कैसे नहिं पटना।
कहै कबीर सुनो रे भाई,
आपुसहि में निबटना।
बन्दे तूही बैरी अपना॥

विष्णु—लोकमान्य तिलक जी,

तिलक—अत्यन्त क्लेश की बात है कि सदियों की पराधीनता

ने भारत को इस प्रकार जकड़ रखा है कि जीवन पर, जीवनोपयोगी अन्न और वस्त्र पर भी आज उसका अधिकार नहीं है। इसीलिये मैंने 'स्वराज्य भारतीयों का जन्म सिद्ध अधिकार है' आन्दोलन चलाया था। क्योंकि मेरा विश्वास है कि स्वतन्त्र भारत ही संसार में स्थायी शान्ति स्थापित कर सकता है। मैंने उस समय अनुभव किया कि संसार के बलवान राष्ट्र भाँति-भाँति के हथकण्डों से दुर्बल राष्ट्रों का दोहन करके मोटे होते जा रहे हैं और चीन, भारत, अफ्रिका, तथा एशिया के अनेक द्वीपों एवं भू खण्डों को अपने साम्राज्य-विस्तार तथा व्यवसाय की मंडी बनाकर, आपस में एक-दूसरे से बढ़ जाने की प्रतिद्वन्द्विता अनिवार्य कर रहे हैं। पिछला और वर्तमान विश्वयुद्ध उसीका परिणाम है।

सनयातसेन—आपने मेरे हृदय की बात कह दी, मेरा देश इन चालबाजियों का काफी शिकार रहा।

जगलूल पाशा—और मेरा मुल्क भी।

विष्णु—तिलकजी के बाद आप लोग ही बोलेंगे।

जगलूल—तिलक भाई की तक़रीर ही काफी है।

सनयात—अब हम लोगों को और कुछ कहने की जरूरत नहीं।

विष्णु—(तिलकजी से) आगे कहिये।

तिलक—पिछला विश्वयुद्ध जिस प्रकार छिड़ा और जैसे उसका अन्त हुआ, उसीमें वर्तमान विश्वयुद्ध का बीज भी था। और इसका अन्त भी यदि इसी प्रकार हुआ तो तीसरे विश्वयुद्ध

की भूमिका तैयार होगी। जब तक बलहीन देशों को दबाकर बलवान बनने की होड़ राष्ट्रों में होती रहेगी, विश्वयुद्ध का सिलसिला इसी प्रकार रहेगा।

स्वयं—महाराज, शान्ति का कुछ व्यावहारिक उपाय भी तो बताइये।

तिलक—जैसा कि मैंने कहा है, भारत शीघ्र स्वतंत्र हो, और लड़ाके राष्ट्र उस पर मध्यस्थता का भार सौंप दें, तो विश्वशान्ति की समस्या स्थायी रूप से हल हो जायगी।

विष्णु—कविराज भूषण कुछ छंद पढ़ें।

भूषण—(मूंछोंपर ताव देकर)

माच्यो खट्मंडल भूमंडल में चहूँ ओर,
मेदिनी दरकि उठी, नभ थहरानो है।
मथ्यो जात सिंधु पुनि, पर्वत प्रपीड़ित ह्वै,
नदी, नद, बन, बीथी गनै को ठिकानो है।
'भूषण' भनत भवसिन्धु ही भवकि उठ्यो,
जीव, जन्तु, जड़, चर, अचर नसानो है।
वोही ज्वाल मृत्युलोक-महाकाल आज ह्वै,
सरग में सायरन बन घिघियानो है।

विष्णु—(इन्द्र से) देवराजजी, अब आप भी कुछ कहिये।

इन्द्र—मैं क्या कहूँ? हम देवतागण तो आपके आज्ञाकारी हैं। किन्तु फिर भी इच्छा होती है कि देव-सेना लेकर विश्वयुद्ध में कूद पड़ूँ।

विष्णु—किसकी सहायता के लिए ?

इन्द्र—जो धर्मपक्ष पर है।

विष्णु—(मुस्कुराकर) परन्तु, सभी युद्ध-लिप्त-राष्ट्र धर्म, ईश्वर, मानवता और विश्व-सुरक्षा की दुहाई दे रहे हैं। जो नास्तिक थे, वह भी अब आस्तिक बन गये हैं। तब हम किसे धर्म-पक्ष पर और किसे अधर्म पक्ष पर समझें ?

इन्द्र—हाँ, यह तो...यह तो ठीक है; परन्तु...परन्तु...

स्वयं—परन्तु-वरन्तु कुछ नहीं महाराज, यही बदला चुकाने का अवसर है। जब-जब जरूरत हुई है, भारत ने देवलोक की सहायता की है। इस समय आप उसकी सहायता अवश्यमेव कीजिये।

विष्णु—भारत में अनेक व्यक्ति इच्छा या अनिच्छा से युद्ध में सम्मिलित हैं, और अनेक युद्ध से अलग हैं। तब हम किसकी सहायता करें ?

स्वयं—(कुछ सोचकर) देव, जो युद्ध नहीं चाहते।

विष्णु—जिनका सिद्धान्त ही युद्ध से अलग रहने का है, युद्ध द्वारा उनकी सहायता करना क्या उचित होगा ?

स्वयं—भारतवासी सिद्धान्त की रक्षा से उद्धार ज्यादा पसन्द करेंगे। युद्ध से, अवतार लेकर, सुदर्शन-चक्र चलाकर, चाहे जिस प्रकार हो, कृपा कर आप भारत का उद्धार करें।

विष्णु—केवल भारत का ?

स्वयं०—हाँ, केवल भारत का; नहीं-नहीं विश्व का भी।... नहीं-नहीं भगवन्, केवल भारत का ही उद्धार कीजिये।

विष्णु—(हँसकर) होगा, भारत का उद्धार होगा; परन्तु पूर्ण प्रायश्चित के बाद। अनार्यों को घृणापात्र और दास बनाकर, उन-पर मनमानी करके आज वह स्वयं अनार्य और दास बनकर प्राय-श्चित पूर्ण कर रहा है। चिन्ता न कीजिये, थोड़ा ही विलम्ब है। गुरुदेव बृहस्पतिजी ने कहा है कि यह प्राकृतिक युद्ध ईश्वरेच्छा-प्रेरित नहीं है। परन्तु, ईश्वर के अतिरिक्त यह कौन ठीक-ठीक बता सकता है? जो हुआ होगा, उसी का परिणाम अब हो रहा है। और जो हो रहा है, उसीमें होनेवाला भी होता जा रहा है। यह निश्चित नियम अनादिकाल से चला आ रहा है और अनादिकाल तक चलता रहेगा। ईश्वर की इच्छा या प्रेरणा उससे अलग नहीं है। विश्व-वेदना की कराह जो सायरन बनकर आज यहाँ सुनाई दी है, पहले भी जब-जब विश्व की ऐसी ही दुर्दशा हुई है,—दूसरे रूपों में अपनी करुण पुकार सुना चुकी है। और उसका निवारण ईश्वर के उसी अटल नियम के अनुसार हुआ है। आज भी विश्व उसी प्रकार शान्ति की प्रसव-वेदना सहन कर रहा है। शीघ्र ही सारी चिन्ताएँ दूर होंगी।
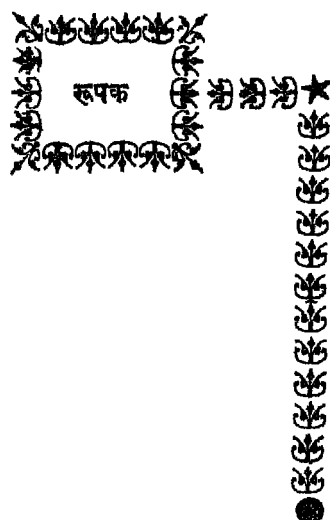
पब्लिसिटी !

[आजकल आत्म-विज्ञान-पब्लिसीटी का युग है। कुछ युवक बेचारे इसी संक्रामक-प्रेरणा से हरिजनों के पास जाते हैं। उनकी बातें सुनिये और गुनिये। 'समाज सेवक' कलकत्ता, में प्रकाशित।]

[हरिजनों की एक बस्ती । ५-७ टूटे-फूटे झोपड़े । ८-१०
हरिजन ताड़ी पीते नाच-गा रहे हैं ।]

मोरे चोलऊ हो, जगवा में रहबऽदिनवाँ चार ।
खालऽपीलऽमौज उड़ाल ऽ, करलऽहँस ब्योहार,
का जानी कब नेवता आई, जइबऽटाँग पसार।
धोबी हमरा कपड़ा न धोए, नाउ न काटें बार,
रोग-बीमारी में कोउ न देखे, अइसन बिपत के मार । मोरे०
सड़ल-गलल जूठा हम खाईं, रहे के घर ना द्वार;
गन्दा-गड्ढा के पानी पिअइले, है ई नरकवा के मार। मोरे०
छाया पड़े, भिनसर मुँह देखे, दें सब गाली हजार;
कुत्तो-बिलाई से नीचा गिनाइले, ये ही है गतिया हमार।मोरे०
भीतर अन्न, न तन पर बस्तर, ना कोई देखन हार;
यही सब दुख से ताड़ी पिअइले, ना हम चोर-लबार । मोरे०

[४-५ सुधारक नवयुवक आते हैं। एक के हाथ में कैमरा है । हरिजन चुप हो जाते हैं । दोनों दलों में बातें होती हैं—]

पहला नव०—भाइयो, नशा पैसे बरबाद करता है और अक़्ल भी ।

पहला हरि०—बाबू, नशा तो बड़े लोग करते हैं । हम लोग तो दुख भुलाने के लिये घिनौने जीवन से कुछ देर मन हटाने के लिये दवा पीते हैं । और न हमारे पास पैसे हैं—न अक़्ल ही बरबाद होंगे ।

(नवयुवक एक-दूसरे को देखते हैं)

२ रा नव०—नशा के साथ अगर गंदगी भी छोड़ दो, तो समाज तुम्हें अपनाने लगेगा।

२ रा हरि०—गन्दगी ! (दुख की मुस्कुराहट से) मालिक, गन्दगी उसे अखरती है, जो पवित्र हो। मैला वही होता है, जो साफ-सुथरा हो। यहाँ तो खुद गन्दे हैं—मैले हैं। गन्दगी हम से अलग ही कहाँ है !

(नवयुवक आपस में संकेत करते हैं।)

३ रा नव०—भाई, तुम लोगों के लिये उस गाँव में पाठशाला, अस्पताल, मन्दिर, कुँआ वगैरह खोल दिये गये हैं।

४था नव०—अपने बच्चों को पढ़ने के लिये भेजो, और खुद भी आओ। कोई बीमार हो, उसकी दवा कराओ और, मन्दिर में—

१ ला हरि०—महाराज, अगर हम लोग वहाँ जायेंगे तो आपका सब इन्तजाम छुला जाएगा। ऊँची जातिवाला वहाँ न आएगा—

२ रा हरि०—और हम लोगों की पढ़ाई या सिखावन तो हम लोगों का काम है—बड़े लोगों के समाज की गन्दगी साफ करना। इससे किसी तरह एक शाम आधा पेट चलता है। पढ़ने लगे, तो वह भी बन्द हो जाय।

३ रा हरि०—बाबू, यह हम लोगों के अगले जन्म का पाप है कि हम जानवर न हुए। मानुस-तन पा के हमारी दशा चमगादड़

से भी गई-बीती है। न इधर के, न उधर के। आदमी में शरण नहीं, जानवर में गिनती नहीं।

(युवक आपस में देखते हैं।)

१ ला नव०---कम से कम नहा भी लिया करो, तो मन्दिर में तुम लोगों को प्रवेश---

१ ला हरि०---इन चीथड़ों के सिवा है क्या, जो नहाकर पहनेंगे ?

२ रा हरि०---अच्छा बाबू, यह तो कहिये, कि जो लोग नहा-धोकर---पवित्र बनकर, मन्दिर में भगवान का दर्शन करते हैं, वह फिर पाप नहीं करते होंगे ?

२ रा नव०---नहीं'''करेंगे कैसे ? करना ही नहीं चाहिये।

३ रा हरि०---'करेंगे कैसे ?' 'करना ही नहीं चाहिए'---यह तो हम लोग भी जानते हैं। यह कहिये---करते हैं या नहीं ?

(नवयुवक आपस में एक-दूसरे का मुँह देखते हैं)

१ ला हरिजन---खैर, सुनिये। अगर भगवान कहीं हैं, तो जिस हालत में उन्होंने हम लोगों को रख छोड़ा है, उसी में दर्शन देंगे।

४ था हरिजन---अरे छोड़ो इन सब झंझटों को, हमारा भगवान तो (ताड़ी भरे चुक्कड़ हाथ में उठाकर) यह है।

१ ला नव०---अच्छा, इस समय तो हम लोग जाते हैं फिर कभी आयेंगे। अब ज़रा तुम लोग सीधे---इस तरह---खड़े हो जाओ। फोटू ली जायगी।

पहला हरि०—ओ···अखबार में छपाने के लिये।

दूसरा हरि०—कि नेता बाबू लोग हरिजनों की सेवा करने गये थे।

तीसरा हरि०—फिर तो आप लोगों की खूब ही तारीफ होगी।

चौथा हरि०—अच्छा, तो ले ही लीजिए फोटो, क्योंकि इतना भी न होने से आप लोग दुखी होंगे। लेकिन कुछ हम लोगों की खातिरदारी भी कबूल कीजिये। ताड़ का मीठा रस बड़ा ही फायदेमन्द होता है। सुना है बड़े-बड़े नेताओं के चेले भी पीने लगे हैं।

१ ला नं०—हाँ हाँ, नीरा, मगर···

२ रा हरि०—बहुत सफाई से लाता हूँ; घबराइए नहीं। जिस बर्तन में रस चू रहा है, उसमें हम लोग मुँह नहीं लगाते। वह देखिये; उतारा जा रहा है।

[एक हरिजन रस लाता है। युवक असमंजस में पड़े से दिखायी देते हैं।

पहला हरि०—क्यों बाबू, इसी हौसले पर हम लोगों का उद्धार करने चले हैं आप ?

[जोश में आकर पहला नवयुवक जैसे ही पीने लगता है कि युवकों के ४,५ गार्जियन झट से आते हैं और 'पापी' 'अछूत' 'भ्रष्ट' आदि कुवाक्य कहते हुए युवकों को मारते-पीटते ले जाते हैं। हरिजन हँसते हुए फिर गाने-बजाने लगते हैं।]

—:※:—
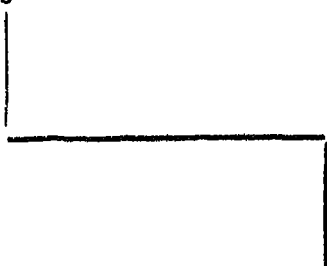
ब्लैक-मार्केट

यह वर्तमान समय की जीती-जागती-बोलती तसवीर है। जन-आन्दोलन और इस (ब्लैक मार्केट) से क्या सम्बन्ध है, रहस्य हास्य के व्याज से गुदगुदाकर बताया गया है। और भी इसमें बहुत-कुछ है।

[१९५० का पतझड़। ११ बजे रात। इस्टसंघपुर का एक बढ़िया बगीचा। फाटक भीतर से बन्द, ४ बन्दूकधारी सन्तरी चौकसी में चक्कर काटते हुए। बीच बंगले के भी सभी द्वार-खिड़की बन्द। उसके अन्दर अंग्रेजी ढंग पर सजे कमरे में बिजली का प्रकाश, एक फैन भी हौले-हौले चलता हुआ। संगमरमर के अंडेनुमा एक बड़े टेबुल की किनारियों से लगी कुर्सियों पर भिन्न-भिन्न वेष-भूषावाले १२ व्यक्ति बैठे हुए। शायद बातचीत का सिलसिला देर से चालू है।]

क्रोकोडाइलसन—मुझे खुशी है कि इतनी देर की बातचीत के बाद इस नतीजे पर पहुँच गये कि हम सब का एक ही कामन-एनिमी-शत्रु है, कांग्रेस और चुनाव में, चाहे जैसे भी हो उसे डिफीट देना है। अब हमें इसके उपाय पर विचार करना चाहिये।

कामरेड पिलपिल—उपाय तो शुरू कर दिया गया है मिस्टर ! कम्युनिज्म का भयंकर बवंडर आज सारे हिन्द-यूनियन को झकझोर रहा है। कुछ ही घण्टे में उसका एक नन्हा शिगूफा फूटकर रंग लानेवाला है।

स्वामी घुरघुरा शास्त्री—परन्तु धर्म, जाति, संस्कृति और साम्प्रदायिक—उभाड़ के कारण ही आज जनसाधारण में कांग्रेस-सरकार के प्रति विद्रोह विस्तार है। उसका सबसे विराट बल गांधी को भी समाप्त कर दिया गया। अतः इसकी कार्यपद्धति को व्यापक बनाना अत्यावश्यक है।

मुन्शी हररूपलाल—देखिये साहब, मैं अरसे से कांग्रेसी रहा हूँ। त्याग की रेकर्ड ही तोड़ दी मैंने। अनेक बार पुलिस के लाठी-धक्के सहे; कई बार हाजत जाकर भी लौट आया। एक दफा जेल भी गया, मगर कम्बख्त घरवालों के माफी माँग लेने के कारण···

कामरेड पिलपिल—अपना बखान छोड़िए, सब्जेक्ट पर आइए।

मुन्शी०—देखिए, बीच में ही न टोकिए।

क्रोको०—येस येस, गो ऑन, गो ऑन।

मुन्शी०—हाँ तो देखिए, मैं अभी तक खद्दर पहनता हूँ।

कामरेड पि०—नकली—मिल के सूत का।

मुन्शी०—देखिए फिर आपने डिस्टर्ब किया (बिगड़कर) क्या समझा है आपने मुझे?

क्रोको०—दिस इज वेरी बैड मिस्टर पिलपिल, इन्हें बात पूरी करने दीजिये।

मुन्शी०—हाँ, तो अंत में कांग्रेसी-लीडरों से तंग आकर अब मैं सोशलिस्ट हो रहा हूँ। कम्युनिस्टों का साथ भी देता हूँ। हिन्दू होने के नाते हिन्दूराज्य-स्थापना का समर्थक हूँ ही। राष्ट्रीय सेवक संघ की भी काफी मदद की है मैंने। किसान सभा और मजदूर-मण्डल···

क्रोको०—शौर्ट में मिस्टर, मुख्तसर में कहिए।

मुंशी०—थोड़ा विस्तार से कहने का मतलब यह है कि मेरा अनुभव देश की भलाई के बारे में—हर दृष्टिकोण से विराट् व्यापक है। इसलिये दावे के साथ कहता हूँ कि इस समय जनता में जो क्षोभ फैल रहा है, उसका मूल कारण है—सोशलिस्ट नेताओं द्वारा की गई कांग्रेस की कटु आलोचना। क्योंकि यह भी कांग्रेस नेता ही समझे जाते हैं और इनका प्रभाव......।

वयम्यानन्द सरस्वती—(चिढ़कर) यह आप लोगों की कोरी बकवास हैं। क्या कम्युनिस्ट, हिन्दू साम्प्रदायिक, और सोशलिस्ट के अलावा मुस्लिमलीग का रोपा हुआ विषवृक्ष, फारवर्ड ब्लाक, विद्यार्थी संघ, किसान सभा, मजदूर यूनियन, अकाली सिख सभा, आदिवासियों—जमींदारों—जागीरदारों का आंदोलन भारतव्यापी कई विशेष प्रांतवासियों की संस्कार में मिली हुई प्रान्तीयता, संस्कृतनिष्ठ हिन्दी-हिमायतीय—इन सबका कुछ भी प्रभाव इस व्यापक जन-क्षोभ पर नहीं है? मेरा ख्याल है—और सही है कि सभी आन्दोलक दलों ने जाने या अजाने, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष, द्वेष या सुधार भाव से, कांग्रेस-सरकार की नींव पर ही चोटें पहुँचाई हैं, और अब भी पहुँचा रहे हैं। जनता भी देखती है कि सभी दल विद्रोही हो रहे हैं तो उसका भी छान-पगहा तुड़ाना स्वाभाविक ही है। मेरा सम्बन्ध अधिकतर किसान-मजदूर संस्थाओं से ही रहा है। और सच पूछिए तो—वास्तविक जनता का

प्रतिनिधित्व यही संस्थाएँ करती हैं। अतएव इन्हीं का बल बढ़ाने का निश्चय आज किया जाय।

मिस्टर दस्तूरचंद—लेकिन बहुत से सरकारी नौकरों को बाद क्यों दे रहे हैं सरस्वती जी—ओ आइएमसौरी स्वामी जी? यही तो असली कल-पुर्जे हैं, सरकारी भ्रष्टाचार के पक्के और जानदार सबूत हैं। हर सरकारी महकमे में इनका बोलबाला है। आप लोग बाहर काम करते हैं, यह भीतर से ही घर खोद रहे हैं, इसलिये मेरा नम्रतापूर्ण—हलका-सा दावा है कि वर्तमान जन-विद्रोह में हम लोगों का—यानी इनका भी हाथ है।

बगलोल हुसैन—मैं भी इसकी ताईद करता हूँ। भड़कने-भड़कानेवाली बातें सुन-सुनकर शरीफ कारिन्दों में भी छूत लग जाती है। भला मिनिस्टरों और कांग्रेस-नेताओं तक में करपशन की तेज फिनाईल सूँघ कर कौन भलामानुस बहती गंगा में डुबकी लगाना न चाहेगा? हमारे बहुत से हमकौम भाई जो वक्त की मार में चुप्पी मारे हुए थे, सबका साथ देने को तैयार हैं।

पत्रकारानन्द—आप लोग उन्हें क्यों भूल रहे हैं, जिनके द्वारा असल काम होता है? बहुत से युगदेव दूत-गरीब पत्रकारों, कार्टूनिस्टों और रिपोर्टरों को क्यों इस काम का महत्व देना नहीं चाहते? जनस्वतंत्रता का नाजायज नहीं—जायज फायदा उठाकर, दबंगता के साथ यही तो जन-क्षोभ का खुला प्रचार करते हैं। यही......।

कामरेड पिल०—माफ़ कीजियेगा महाशय । आज के बहुतेरे भारतीय पत्रकार—पत्राध्यक्ष या सम्पादक किसी न किसी राजनीतिक गुटबन्दी के नेता हैं या अनुयायी । इनका मँजा हुआ अभ्यास घुमघुमौव्वे शब्दाडम्बर से सभ्य-गाली देने का रहा है। पहले जियादतर अंगरेजोंकी ख़बर ली जाती थी । अब भी हथियार वही है, सिर्फ़ निशाना बदल गया है । इसके सिवा, इनके गोबरकुण्डे-दिमाग़शरीफ में और कुछ है भी तो नहीं। जनक्षोभ पैदा करते हैं हम लोग, ये पत्रकार तो उसे बेचकर अपना पेट पालते हैं।

पत्र का०—(उठकर) आप बहुत बहक रहे हैं, इतने टुच्चे-पन पर न उतरिये मिस्टर कामरेड !

काम०—(उठकर) खबरदार, आप टुच्चेपन को वापस लीजिये।

मुंशी—जी हाँ पत्रकारानन्दजी, आपका आक्षेप तीव्र हो गया।

पत्रकार०—मुझे अफसोस है। [दोनों बैठते हैं]

मोटेलाल खुराफ़ातिया—जिस प्रकार आप सबने मान लिया है कि हम सबका एक ही दुश्मन है, उसी तरह यह भी कि जनता में सरकार के प्रति असन्तोष-वृद्धि हो रही है। इसकी बढ़ाई अपने अपने दल-स्वार्थ से आप लोग बखान रहे हैं। लेकिन जरा गहराई से सोचिए। सरकार में भ्रष्टाचार का कारण क्या

है ? घूसखोरी। जनता को क्या शिकायत है ? अन्न-वस्त्र तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं की महँगी। अब देखिए कि घूस-खोरी और महँगी का कारण क्या है ? वही, जो ब्लैक-मार्केटिंग के नाम से बदनाम हैं।

काम०—पूँजीपतियों की गद्दारी और मक्कारी से भरा रोजगार।

मोटे०—ठण्ढे मन से काम लीजिये कामरेड। ग्राहक को सन्तोष दिलाकर, दो पैसे पैदा करना, हर व्यापारी, सदा से करता आया है। इस 'आर्ट' को आप चाहें जिस नाम से कोसें, मगर है यह स्वाभाविक। देश जब विश्व-युद्ध से पीड़ित हो या किसी दैवी विपत्ति में फँसा हो तो जीवन-निर्वाह की चीजों का मिलना असम्भव की भाँति महा-कठिन हो जाता है। परिश्रमी व्यापारी पैसों का पानी बहाकर—जान पर खेलकर, उन्हें मुहैया करता है। फिर, अगर औसत से, मुनासिबाना कुछ अधिक दर बेचता है, तो इसमें अन्याय क्या है ?

क्रोको०—बिल्कुल नहीं, एकदम मुनासिब।

घुरघुरा०—सत्य वचन, व्यापारे बसते लक्ष्मीः।

कामरेड०—असल तो यह है मिस्टर क्रोकोड़ाइलसन, यह पेड़ आप ही लोगों का लगाया हुआ है। ब्लैकमार्केट का सीधा अर्थ है—कालाबजार। मतलब कालों का बाजार। और इसकी बुनियाद तब पड़ी थी, जब गोरों ने कालों की मार्केटिंग—खरीद

बिक्री शुरू की थी—अर्थात् काले देशों को अपना बाजार बनाना-आरम्भ किया था।

घुरघुरा०—नहीं, नहीं, काला शब्द अत्यन्त प्राचीन है—सनातन है। यह रंगों में सर्वश्रेष्ठ है। काले विष्णु हैं-राम हैं-कृष्ण हैं। काला आकाश, काले-काले बादल, काले अलिवृन्द, सस्य-श्यामला-

कामरेड०—वाह, क्या कहने हैं शास्त्री जी के!. अंधकार काला, विष काला, सुना है यमराज भी काले हैं। यही तो है ऐसे पूँजीपतियों का असल रंग!

मोटे०—आपको तो साहब, पूँजीपति शब्द से ही चिढ़ है। एक ही लाठी से आप सब को हाँकते हैं। वास्तव में आपके लक्ष्य होने चाहिये वे पूँजीपति जो कांग्रेस-सरकार के समर्थक और उसके सहयोग से मजदूरों को चूसनेवाले हैं। हम लोग तो मजदूरों को हिस्सेदार समझते हैं, आपके, और शास्त्री जी के दल के गुप्त सहायक हैं।

घुरघुरा०—इसमें क्या सन्देह है सेठजी। जब भारत पर भगवा झण्डा लहराने लगेगा, तभी भामाशाह की तरह आपकी सहायता का मूल्य आँका जायेगा। हमारे छद्म-वेषी समाचार-पत्र, और संस्थाएँ, आप ही लोगों के बल पर तो चलती हैं।

कामरेड०—हमारे दल से, आपकी सहायता का क्या संबंध?

मोटे०—(मुस्कुराकर) चौपटानन्द, हड़पलाल, भकोल सिंह, किरापट तिवारी को आप जानते हैं?

कामरेड०--यह लीजिये, यही तो हमारे अर्थ-वीर हैं। किन-किन मुसीबतों से यह बेचारे रुपये-पैसे की जोगाड़ करते हैं, हमें भी नहीं मालूम।

मोटे०—(हँस कर) मालूम हो भी नहीं सकता। इस बारे में हमारा प्रबन्ध ही ऐसा है। हमारे सरीखे अनेक व्यापारियों ने बहुत बड़ा फंड इकट्ठा करके, कांग्रेस-विरोधी संस्थाओं की सहायता का कार्यक्रम इस प्रकार बना रखा है कि उसका कहीं कुछ खुला हिसाब नहीं है। आपके बेचारों वीरों को भी पता नहीं है।

कामरेड० - खैर, यह माना कि आर्थिक सहायता दे-दिलाकर आप लोग अपने विराट पापों का लघु प्रायश्चित्त कर लेते हैं, किन्तु ब्लैकमार्केट में हमारे किसान-मजदूर ही जियादा पीसे, जाते हैं।

मोटे०---इस बारे में भी भ्रम निवारण कर लीजिये। ब्लैक-मार्केट की बाजार पद्धति में, सच पूछिये तो अप्रत्यक्ष रूप से समाजवाद और साम्यवाद का रहस्य छिपा है।

वैषम्या०—अच्छा जी !! ज़रा सुनें तो।

मोट०-हाँ सुनिये। चाहे जिस प्रकार का माल हो, रेल से-जहाज से—प्लेन से—ट्रक-मोटर से—घोड़े बैल से—नाव से या पैदल, इधर-उधर भेजा जाता है। इनसे सम्बन्धित कई प्रकार के कर्मचारियों को मुँहमांगा पारिश्रमिक अवश्य देना

पड़ता है। इसी प्रकार मुनाफे के १२-१४ आने इन साझेदारों में वितरण कर, हम कई भागीदारों के हिस्से में केवल दो या चार आने ही पड़ते हैं। अब आप ही ईमान से—नहीं-नहीं, ईमान छोड़ कर बताइये, हम लोग एक सच्चे मानी में समाजवादी या साम्य-वादी हैं या नहीं ?

क्रोकोडाइलखन—हम लोग कितने ही यूरोपियन, यहाँ रोज-गार या सर्विस में हैं। नाता निहायत गहरा रहा है। हम-लोगों ने इस देश को सँवारा है, सुधारा है, और इस लायक बनाया है। आज जो कुछ यहाँ हो रहा है, उससे हम लोग भी अलग नहीं हैं।

कामरेड पित०—खुद सुलगाकर जमा लो भला कहीं दूर रह सकती है ?

क्रोको०—ह्वाट ?

कामरेड पित०—यानी आप ठीक कह रह रहे हैं।

क्रोको०—थैंक्यू। हाँ तो मैं यह कर रहा था कि हम लोगों की भी दिलचस्पी आप लोगों की इस मौजूदा हलचल में है। आप सब ने अपने अपने पार्ट अदा करने की बड़ाई हाँकी। हम लोगों के भी कभी दून की हाँकने का मौका आयेगा। पर कब ? जब आप और हम कामयाब होंगे। खुदा वह दिन जल्द दिखाए। (हाथघड़ी देख कर) भाइयो, तीन घंटे से हम इस कालकोठरी में बन्द हैं। दो घंटे बाद, शायद सबके दम न घुटने लग

जायँ। इसलिये असल सबजेक्ट पर आकर एक फैसला कर लेना चाहिये। मेरा सुझाव है किसी एक मज़बूत पार्टी को हम लोग चुन लें और उसी का साथ दें। अब सवाल है कि किसे चुनें?

कामरेड०—नेबरली कम्युनिस्ट पार्टी को।

घुरघुरा०—नहीं नहीं, भगवा झण्डा-समर्थक दल को।

मुंशी०—स शक्तिरड पार्टी को।

सुन्दर बोस—फार्वर्डब्लाक को।

वैषम्यानन्द०—किसान-मजदूर संघ ही इसका अधिकारी है।

कोको०—(नम्रता से) कोई एक को चुन लीजिये न! [उपरोक्त दल उसी प्रकार अपने कथन-ज़ोर से दोहराते हैं। हल्ला सा मच जाता है]

कोको०—देखिए, इसी तरह अगर आपस में ही रगड़ होती रही, तो हमारा ज़बरदस्त दुश्मन बिलासक कामयाब हो जायगा।

कामरेड०—हम उसे कुचल देंगे।

घुरघुरा०—हम उसका नाश कर देंगे।

मुंशी०—हम केवल उसकी कमर तोड़कर छोड़ देंगे—मतलब यह कि—हिंसा नहीं करेंगे।

वैषम्या०—हम उससे राज्य छीन, उसके अधिकारियों से खेती और मजदूरी का काम लेंगे।

(फिर हल्ला मचता है।)

मोटे०—शान्त हो जाइए, शान्ति से काम लीजिए। देखिए, केवल इतना कहने से ही कि 'हम यह करेंगे, वह करेंगे', काम नहीं चलेगा। कुछ त्याग करने से और कुछ सचाई से काम करने से ही सफलता मिलेगी। अगर आपस में समझौता करके एक दल नहीं चुन सकते, तो मेरा एक प्रस्ताव है।

कामरेड०—कहिए।

घुरघुरा०—आपका प्रस्ताव निश्चय ही व्यावहारिक होगा, अवश्य कहिए।

मो०—कांग्रेस के जितने विरोधी दल हैं, सब अपने-अपने उम्मीदवार खड़े करें। और हम लोग, अपने-अपने दृष्टिकोण से उनको विजयी बनाने की चेष्टा करें।

(सब की विचार-मुद्राएँ भिन्न-भिन्न और दर्शनीय। आधा मिनिट चुप—वातावरण।)

कामरेड०—लेकिन साथी, इससे यह भी तो हो सकता है कि अलग-अलग उम्मीदवार खड़े करने से, हम सबके वोट बँट जायें, और अकेला होने से दुश्मन-दल बाजी ले जाय।

(फिर सब सोचने लगते हैं—क्षण भर चुप्पी)

मोटे०—परन्तु यह भी तो हो सकता है कि अलग-अलग दलों में बँट जाने पर कांग्रेस को भी इतने वोट न मिलें कि वह अपनी सरकार बना सके।

[फिर सब एक-दूसरे का मुँह निहारते हैं]

कोको०—तब, ऐसी हालत में, आप बहुमत से एकदली सरकार बना सकते हैं। इस काम में अगर आप पसन्द करें तो हम—बृटिश लोग, हिन्द-यूनियन के सच्चे शुभचिंतक की हैसियत से, इस नेक काम में मदद करेंगे।

कामरेड०—(क्षण भर सोचकर व्यंग से हँसकर वाह उस्ताद, क्या दूरकी कौड़ी लाई है तुमने। कुर्बान जाऊँ इस सूझ-बूझ के। (धीरे से) और इसी आड़ में इस दफा विलायती चुनाव-चक्र में चर्चिल-पंथियों को बाजी बदने का मौका भी मिल सकता है!

[दरवाजे पर खट् खट् की तेज ध्वनि। सब चौंककर उधर देखते हैं। मोटेलाल जी सहमते-डरते से, द्वार खोलते हैं। भारी कोलाहल—भयंकर चीख-पुकार की आवाज। घबराया हुआ एक संतरी भीतर आकर द्वार बन्द कर लेता है।]

१ संतरी—करीब घंटे भर से लोगों में बेतहर लूट-मार मची हुई है।

कोको०—आमें पुलिस या फौज नहीं आई!

१ संतरी—नहीं साहब, अभी तक नहीं!

कोको०—(जैसे सन्तोष हुआ हो) आखिर बगावत फैल ही गई।

१ संतरी—साहब, बग़ावत तो सरकार के खिलाफ़ प्रजा

करती है, लेकिन इसमें तो आपस ही में लोग एक-दूसरे को लूट रहे हैं—मार-काट मचा रहे हैं।

कामरेड०—गरीब—और मजदूर भी ?

१ सन्तरी—जी हाँ सब। जिसका जो चाहता है, लूट-खसोट कर रहा है।

घुरघुरा०—हिन्दू, मुसलमानों को नहीं लूट रहे ?

१ सन्तरी—कह तो दिया कि गरीब, अमीर या हिन्दू मुसलमान का कोई भेद ही नहीं है।

[फिर द्वार पर खट्-खट् की पहले से भी तेज आवाज] १ संतरी दरवाजा खोलता है, बेतरह घबराये हुए दूसरे सन्तरी के साथ लोहू-लुहान, फटे चिटों वस्त्रों मे तीन युवकों का झटसे प्रवेश। कोलाहल और भी जोरों पर। द्वार बन्द कर लिया जाता है]

२रा सन्तरी—यह साहब तीनों जवान चहारदीवारी लय कर अन्दर आ गये, गोली मारने के बजाय मैं इन्हें यहां ले आया।

मोटे०—अच्छा किया, (युवकों से) आप कौन हैं—और इस तरह......?

१ युवक—(ओठों को जीभ से तर करता हुआ) क्या बताऊँ ? (पिलपिल को पहचान कर) अरे आप भी यहाँ हैं ?

कामरेड०—कौन ? आबजोश भाई ? आवो आवो (खुद खड़े होकर अपनी कुरसी पर बैठाता है) अब कोई हरज नहीं है।

यह बगीचा हमारे दोस्त मोटेलाल जी का है। मगर यह (दोनों अन्य युवकों को ओर देखकर) कौन हैं?

आवजोश—यह है रकटू आर्य महाशय, मशहूर कामरेड। (घुरघुरानन्द उसे अपनी कुरसी पर बैठाकर खड़े हो जाते हैं) और यह हैं हम लोगों के नेता कामरेड पलीता (सब खड़े होकर नमस्कार करते हैं। मोटेलाल जी उन्हें अपनी कुरसी पर बैठाते हैं)

कामरेड पिल०—आज का प्रोग्राम कामयाब तो हुआ न? हम लोग करीब-करीब आधी रात से ही—इसी मसले पर गौर कर रहे हैं।

कामरेड पलीता—(गिरे मन से) क्या कहूँ, इस मुल्क की तकदीर ही ऐसी है। आज हमारा प्रोग्राम रेल, तार, डाक बिजली और पानीघर, कल-कारखानों में तोड़-फोड़ करके सारे देश में उपद्रव मचा देने का था। शुरूआत के लिये यही कसबा चुना था......जरा पानी, (मोटेलाल झट सुराही से शीशे के ग्लास से पानी लाते हैं। पीकर) पिछले छः महीने से लोगों को इस काम की ट्रेनिंग दी जा रही थी।

कोको०—हमें मालूम है।

मोटे०—हमने काफी चंदा दिलवाया है।

कामरेड पिल०—तो, कार्य-क्रम में कुछ गड़बड़ी हो गयी, या लोगों ने साथ नहीं दिया?

कामरेड पलीता—(धीरे से) सब हो गया। (दम लेकर) करीब आधे घंटे तक तो ठीक-ठीक चला। जैसा कि इशारा था, सिखाये लोगों ने गैर-कानूनी कारंवाइयाँ शुरू कर दीं। दो जगह रेल की पटरी उखाड़ी, डेढ़ दर्जन टेलीग्राफ-टेलीफोन के खम्बे गिराये, डाक-तार घर लूटे गये, और भी कई सरक
लूटे जलाये गये। देखा देखी औरों ने भी मौके से फायदा उठा लेना चाहा। कुछ लूट-खसोट भी चली। मगर खबर-पर-खबर देने पर भी पुलिस-फौज न आयी। हमारी चाल थी कि पुलिस फौज ज्यों ही कड़ाई पर उतर आयेगी तो यह चिनगारी सरकार के खिलाफ़ बग़ावत की आग भड़का देगी। फिर तो इस आग को हम सारे मुल्क में लगा देते। मगर अफसोस, न जाने सरकार को मालूम हो गया, या क्या हुआ कि आम पुलिस—फौज को कौन कहे, साधारण चौकीदार भी न आया। थोड़ी देर बाद यह आग खुद में ही जल उठी। ऐसी लूट-मार मची कि मानो आपस में ही जंग छिड़ गया हो। हम लोगों ने—सारे वर्करों ने—जी जान से रोकने की कोशिश की। मगर बरसाती महानदी का बहाव रोकने जैसा नामुमकिन हो गया। इसका नतीजा यह हुआ कि लोग अब बचने की तरकीबें करने लगेंगे। गिरोह बना-बना कर लूट-मार करनेवालों को रोकना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे, ऐसे बहुत से लोगों का बे-कायदे का संगठन हो गया। गैर-कानूनी कारंवाइयाँ करने और लूट-खसोट मचाने

वालों को पकड़-पकड़ कर पीटना और पुलिस चौकी पहुँचाया जाने लगा। कुछ बाद में पुलिस-फौज आई। लोगों की धरपकड़ शुरू हो गयी। कई गोलियों से मरे, जख्मी हुए, बाकी पकड़ लिये गये या पकड़ लिये जायेंगे। क्योंकि आम जनता का सहयोग पुलिस को आप से आप मिलने लगा है। हम लोग किसी तरह जान बचाकर भागे। (कुछ सोचकर) अब यह सरकार सैकड़ों साल के लिये मजबूत हो गई।

[द्वार पर खटखटाहट की आवाज। मोटेलाल दरवाजा खोलते हैं, तीसरा सन्तरी घबराया हुआ अन्दर आकर]

३ संतरी—पुलिस-फौज ने चारों ओर से बाग घेर लिया। कप्तान साहब फाटक खोलने को कहते हैं।

[सब घबराते हैं। मोटेलाल कांप उठता है]

मोटेलाल—घेर लिया ?······तब तो, तब महा मुश्किल... (कुछ सोचकर) पहरेदार, तुम लोग इन दोनों (आए हुए कामरेडों) को पकड़ लो।

कामरेड पिल०—यह महा अन्याय होगा लालाजी।

मोटेलाल—(संतरियों से)—इसे भी पकड़ लो। [तब तक फाटक तोड़कर पुलिस-फौज अफसर रिवाल्वर और संगीनी-बंदूक ताने अन्दर आ पहुँचे]

कप्तान—हैंड्स अप !... [सब हाथ ऊपर उठाते हैं]

पुलिस कप्तान—ख़बरदार, जिस किसी के पास कोई हथियार हो दे दे।

[सब की तलाशी। सिर्फ १ कामरेड के पास से रिवाल्वर और दो के पास से बम निकले। तीनों को हथकड़ियाँ भर दी गई।

कप्तान०—(अकस्मात् पिलपिल और शास्त्री को देखकर) ओहो, आप लोग भी मौजूद हैं? (उन्हें भी हथकड़ियाँ भर कर) यह सर झुकाए कौन हजरत हैं? (नजदीक जाकर, हँस कर) ओ गुडमौर्निङ्ग मि० क्रोकोडाइलसन? आपके बारे में भी सरकारी हुक्मनामा है। (क्रोकोडाइलसन फीकेपन से मुस्कुराता है। (मोटेलाल से) आप अपने बागीचे में इन मेहमानों के साथ, आधी रात से ही बंद क्यों हो रहे थे?

मोटे०—(गिड़गिड़ाहट की लजीली मुस्कुराहट से)...क्या बताऊँ...आप लोग तो जानते ही हैं...हम लोग...?

कप्तान—(हँसकर) ओ' ब्लेकमार्केटिंग की हिस्सेदारी, राय-मशिवरा, क्यों?

मोटे०—(उसी अभिनय से) अब, अपने मुँह से क्या कहूँ? आप तो समझ ही गये। (सबकी ओर देखता है)

कप्तान—तो आप सभी साझेदार हैं?

मोटे०—जी, इन चारों (कामरेडों) को छोड़कर।

कप्तान—कोई बही-खाता है इस मार्केट का?

मोटे०—जी नहीं।

कप्तान—(बग़लवाले बंद छोटे रूम को दिखाकर) इस रूम में क्या है ?

मोटे०—जी, इस बंगले की फुटकर चीजें इसमें रहती हैं।

कप्तान—खोलिये तो···

[मोटेलाल ताला खोलता है, मगर दरवाजा भीतर से बंद देखकर अकचकाता है]

मोटे०—भीतर से बन्द किसने किया ?

कप्तान—(हँसकर, दरवाजे पर ४ दस्तक देता है। द्वार खुल जाता है। अन्दर दो पुलिस ऑफिसर वाकयन्त्र पर कुछ काम करते हुए)

मोटे०—(घबराकर) यह क्या ?

[कोकोडाइलसन पाकेट से कुछ निकाल कर मुँह में रख लेता है।]

कप्तान—आपके आज के ब्लैक मार्केट का बोलता चिह्न;—आपकी बातचीत की रेकर्डिङ्ग। चलिये थाने पर, वहीं सब अपना-अपना बयान सुन लीजिये।

मुंशी हररूप०—क्या हम लोगों में से कोई सरकारी गवाह नहीं बन सकता कप्तान साहब ?

कप्तान—आप ऐसे बहुरुपिया तो हरगिज़ नहीं। [कोकोडाइलसन कुरसी पर अचेत हो जाता है। कप्तान जाँच कर अफसोस से सर हिलाता है] अफसोस, इस बेचारे ने खुद ही अपना प्रायश्चित्त कर लिया।

[कप्तान के इशारे से घायल कामरेडों की मरहम-पट्टी की जाती है। दोनों पुलिस ऑफिसर वाक्यंत्र का विवरण देते हैं, कप्तान देखकर उसमें कई जगह निशान लगाते हैं।]

कप्तान—हाँ यह तो बताइए पत्रकारानन्द जी। भारत के अधिकांश पत्रकार काँग्रेस के समर्थक हैं। वे अगर उसकी आलोचना करते हैं, तो सुधार भाव से—अपनापन से। फिर, सरकार विरोधी—असंतोष उत्पन्न करने का श्रेय आप क्यों लेना चाहते हैं ?

पत्रकार०—(कुछ झेंपते हुए—रुक-रुक कर) बात यह है कि कितने ही पत्रकार······

कप्तान—आपकी तरह अवसरवादी हैं। आज सरकार फेल कर जाय तो कहेंगे—इसमें हमारी भी बहादुरी है, अगर मजबूत रहे तो डींग हाँकेंगे कि हम तो उसे ऐसा बनाने के लिये ही आलोचना करते थे। वाहरी पत्रकारिता ! (मोटेलाल से) अच्छा लाला सेठ, आपके डबल ब्लैकमार्केट की पोल खुल गई। भगवान और धर्म को आप ठग सकते हैं, किन्तु सरकार के वफ़ादार कर्मचारियों को नहीं। आपके इस बाग़ का मुन्नू माली, त्रिभुवन सिंह जमादार और आपका भतीजा रामलाल सरकारी गवाह बन गये हैं।

मोटेलाल—जी, सरकार······मैं केवल ब्लैक-मार्केटिंग का दोषी हो सकता हूँ, लेकिन सरकार के विरुद्ध में······

कप्तान—ब्लैकमार्केटिंग ही तो सारी खुराफात की जड़ है खुराफातिया जी। खैर, चलिये बड़े घर !